ISSN-0971-8397

विकास को समर्पित मासिक

योजना

नवम्बर, 2002

मूल्य: 7 रुपये

बच्चों पर विशेष

सदस्यता कूपन

❑ नई सदस्यता ❑ नवीनीकरण ❑ पता बदलने के लिए

(जो लागू होता हो उस पर '✓' का चिन्ह लगाएं।)

मैं.....(पत्रिका का नाम एवं भाषा)

का ❑ वार्षिक (70 रुपये) ❑ द्विवार्षिक (135 रुपये) ❑ त्रिवार्षिक (190 रुपये) सदस्य बनने का इच्छुक हूं।

डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर/मनीआर्डर संख्या ..... तारीख .....

नाम .....

वर्ग ❑ विद्यार्थी ❑ शिक्षक ❑ संस्था ❑ अन्य

पता : .....

.....

.....

पिन .....

नवीनीकरण/पता बदलने के लिए कृपया अपनी सदस्य संख्या यहां लिखें [ ]

डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर/मनीआर्डर 'निदेशक, प्रकाशन विभाग' के नाम से बनवाएं और कूपन के साथ निम्न पते पर भेजें :

विज्ञापन एवं प्रसार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक IV, लेवल VII, आर.के. पुरम, नई दिल्ली-110066,

दूरभाष : 6100207, 6105590

पहली प्रति की प्राप्ति हेतु आठ से दस हफ्ते का समय दें।

योजना

वर्ष : 46 अंक 8 नवम्बर, 2002 कार्तिक-अग्रहायण, शक-संवत् 1924

प्रधान संपादक
विश्वनाथ रामशेष

कार्यकारी संपादक
अंजनी भूषण

उप संपादक
रेमी कुमारी

संपादकीय कार्यालय
कमरा नं. 538 ए, योजना भवन, संसद मार्ग,
नई दिल्ली-110 001
दूरभाष : 3096738, 3717910
3096666/2510, 2508, 2566

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
डी.एन. गांधी

विज्ञापन एवं वितरण प्रबंधक
अनिल कुमार दुग्गल

आवरण
नवल किशोर

इस अंक में

• **बड़ों की व्यस्तता : बच्चों का बोझ**	मृदुला सिन्हा	4
• **बाल साहित्य : मौजूदा परिदृश्य और चुनौतियां**	प्रकाश मनु	8
• **देश में बाल संरक्षण एवं कल्याण की रणनीति और प्रभाव**	उमेश चंद्र अग्रवाल	12
• **काम के बोझ तले दबा बचपन—कारण एवं निवारण**	प्रशान्त अग्निहोत्री	16
• **औद्योगिक विकास में राज्य वित्तीय निगमों का योगदान**	मुकेश कुमार शर्मा	21
• **समुद्री पारिस्थितिकीय तंत्र के संरक्षण की आवश्यकता**	मनोहरी पुरी	24
• **जापान की आर्थिक प्रगति में प्रबंध की 'जेन' शैली का योगदान**	विनोद कुमार तिवारी	29
• **आमदनी बढ़ाने के लिए मखाने की खेती**	जी.पी. रेड्डी	32
• **धर्म-आधारित पर्यटन का उत्कृष्ट उदाहरण माता वैष्णव देवी**	मनीष श्रीवास्तव	34
• **भारतीय खेल : दशा एवं दिशा**	उमाशंकर भट्ट	40
• **जहां चाह, वहां राह—महिलाओं को घर बैठे वैकल्पिक रोजगार**	देवेन्द्र उपाध्याय	44
• **स्वास्थ्य-चर्चा**	—	46
• **नए प्रकाशन**	—	48

योजना हिन्दी के अतिरिक्त **असमिया, बंगला, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, मराठी, तमिल, उड़िया, पंजाबी, तेलुगू** तथा **उर्दू** भाषाओं में भी प्रकाशित की जाती है। नई सदस्यता के नवीकरण, पुराने अंकों की प्राप्ति एवं एजेंसी आदि के लिए मनीआर्डर/डिमांड ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर 'निदेशक, प्रकाशन विभाग' के नाम से बनवा कर निम्न पते पर भेजें :-
विज्ञापन एवं प्रसार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक IV, लेवल VII, आर.के. पुरम, नई दिल्ली-110 066 टेलीफोन : 6100207, 6105590

चंदे की दरें : वार्षिक : 70 रु.; **द्विवार्षिक** : 135 रु.; **त्रैवार्षिक** 190 रु.; विदेशों में **वार्षिक** दरें : **पड़ोसी देश** : 500 रु.; **यूरोपीय एवं अन्य देश** : 700 रु.

'योजना' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। जरूरी नहीं कि ये लेखक भारत सरकार के जिन मंत्रालयों, विभागों अथवा संगठनों से सम्बद्ध हैं, उनका भी यही दृष्टिकोण हो।

संपादकीय

बच्चों के बारे में अंग्रेजी में प्रसिद्ध कहावत है—'द चाइल्ड इज द फादर आफ मैन', जिसका अर्थ यह है कि बच्चा ही मानव-जाति का असली शिक्षक है। स्पष्ट है कि देश के इस नन्हें नागरिक की आज की जरूरतों पर ध्यान देना समाज की सबसे अहम जिम्मेदारी है। देखना यह है कि क्या हम उसे वह संवेगात्मक एवं भावनात्मक सुरक्षा दे पा रहे हैं जो न केवल भौतिक सुरक्षा जितनी, अपितु उससे भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। आज की सामाजिक व्यवस्था में हमारे समाज के इन कर्णधारों को जन्म लेते ही मां की व्यस्तताओं को भुगतना पड़ता है। शहरों की हमारी जीवनशैली हमारे शरीर, मन और बुद्धि की आवश्यकता के अनुरूप नहीं बनी होती, वह हमारी अपनी बनाई हुई होती है। इसमें हमने 'पेट' यानी अर्थ को अत्यधिक प्रधानता दे रखी है। विडम्बना यह है कि इस जीवनशैली की मार मध्यम वर्ग ही नहीं, अपितु झुग्गी-झोपड़ियों एवं बड़ी कोठियों में रहने वाले बच्चे भी झेल रहे हैं क्योंकि वहां भी मां-बाप के पास समय की उतनी ही कमी है।

बचपन-निर्माण की ये शहरी परिस्थितियां यद्यपि बदली नहीं जा सकतीं तथापि माता-पिता, आया, पालनाघर के व्यवस्थापक एवं अन्य संबद्ध व्यक्तियों के विशेष प्रशिक्षण की व्यवस्था करके तथा पालनाघरों में उपलब्ध सुविधाओं को बदली परिस्थितियों के अनुरूप ढालकर समस्या का काफी हद तक समाधान ढूंढ़ा जा सकता है।

जाहिर है कि उपरोक्त परिस्थितियों में, जहां बच्चों को मां-बाप का साथ कम मिल पाता है, कहानी, कविता कार्टून आदि की पुस्तकें उनके लिए मनोरंजन का अहम साधन बन जाती हैं। अपनी मातृभाषा में लिखा गया साहित्य बच्चों को जिस हद तक आह्लादित एवं आत्मविभोर कर पाता है, उतना अन्य भाषा का नहीं। बच्चों के लिए हिन्दी में ऐसा साहित्य प्रचुरता से उपलब्ध है। यही नहीं, इनका स्वरूप भी अब अत्यंत आकर्षक होता जा रहा है और इन्हें पढ़ने वाले उत्साही पाठकों का भी एक बड़ा वर्ग उभर रहा है जो एक महत्वपूर्ण परिवर्तन है। 14 नवम्बर के 'बाल-दिवस' के उपलक्ष्य में 'योजना' बच्चों से संबंधित इन्हीं सब मुद्दों पर विशेषज्ञों के विचार लेकर आपके समक्ष प्रस्तुत हो रही है।

बाल-श्रमिकों एवं बाल-कल्याण कानूनों पर भी अंक में दृष्टिपात किया गया है। विश्व के अधिकांश विकासशील देशों में न केवल शिशु मृत्युदर अधिक है बल्कि बच्चों में कुपोषण, अशिक्षा, बीमारी और मूलभूत अधिकारों का हनन भी आम बाते हैं। अत: कानूनों का कड़ाई से अनुपालन सुनिश्चित करना आवश्यक है।

घरेलू पर्यटन बढ़ाने का एक बेहतर विकल्प धर्म-आधारित पर्यटन का विकास है। जम्मू-कश्मीर राज्य में स्थित माता वैष्णव देवी का मंदिर एक ऐसे ही पर्यटक स्थल के रूप में देश-विदेश में विख्यात है। पर्यटकों की सुविधा के लिए स्थापित माता वैष्णव देवी बोर्ड के प्रयासों से यहां पर्यटन को पर्याप्त बढ़ावा मिला है जिस पर लेख अंक में शामिल किया गया है।

'मूल्योन्मुख शिक्षा' पर 'योजना' का सितम्बर अंक पाठकों द्वारा अतिशय सराहा गया। यह हमारे लिए हर्ष का विषय है। गांधीजी पर केंद्रित अक्तूबर अंक के संबंध में प्रतिक्रिया मिलने का अभी इंतजार है। 'योजना' के प्रत्येक अंक के साथ पाठकों को अमूल्य एवं ज्ञानपरक सामग्री देने का हमारा यह प्रयास आगे भी जारी रहेगा। आप अपनी प्रतिक्रियाओं से हमें अवगत कराते रहें ताकि आदान-प्रदान का यह सिलसिला चलता रहे।

—सम्पादक

आपकी राय

(संदर्भित अंक—सितम्बर)

'योजना' जीवन की कसौटी

सितम्बर अंक काफी पसंद आया, योजना न सिर्फ जानकारियों की कसौटी है बल्कि इसका हर एक अंक अपने-आप में 'रामबाण' सिद्ध होता है। अंक में माननीय अटल जी की कविता 'न दैन्यं न पलायनम्' पसंद आई। कर्ण सिंह का '21वीं सदी में भारत' एवं श्री ए. रामलिंगम द्वारा रचित 'आधुनिक मैक्रो इकानॉमिक्स के जनक' काफी पसंद आया। 'योजना' अपने-आप में जीवन की अमूल्य कसौटी है। इसका हर एक अंक मैं बड़े आनंद के साथ पढ़ता हूं। साथ ही मैं उन प्रतिभाओं एवं उच्च श्रेणी के लोगों को भी धन्यवाद देना चाहूंगा जो हमें इन लेखों द्वारा ज्ञान के प्रकाश की ओर ले जाते हैं। आशा है 'योजना' का यह सिलसिला यूं ही चलता रहेगा।

—द्वारिका प्रसाद, रूद्रप्रयाग (उत्तरांचल)

बेहद अनूठा अंक

विकास को समर्पित बेजोड़ एवं अनूठा मासिक 'योजना' का सितम्बर अंक प्राप्त हुआ। 'मूल्योन्मुख शिक्षा' पर केन्द्रित एवं डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन को समर्पित उक्त अंक में वैसे तो समस्त लेख पठनीय एवं महत्वपूर्ण तथ्यों से सिक्त थे परंतु सर्वाधिक प्रभावित किया लेख 'इक्कीसवीं सदी मे भारत' ने।

आज जबकि प्रत्येक मनुष्य 'निजत्व' सोचने में ही मगन है तब हमारे देश के कुछ विशिष्ट चिंतक देश के चिंतन में लगे रहकर हमें यह ज्ञात कराने में सफल रहे हैं कि उनमें अभी देश की खातिर जिजीविषा शेष है। 'इक्कीसवी सदी में भारत' लेख में लेखक द्वारा लिखित समस्त तथ्य आज हमारे देश की हकीकत है, जिसे झुठलाया नहीं जा सकता बल्कि कड़वी हकीकतों को मधुरता में जरूर परिवर्तित किया जा सकता है जो हमारे देश के लिए तो लाभप्रद सिद्ध होगा ही, हम भी इसके सद्परिणामों से वंचित नहीं रहेंगे। निश्चित ही ऐसा होने पर देश का प्रत्येक जन प्रगति पथ पर अग्रसर होगा।

—कजरी मानसी ऐश्वर्यम् व कस्तूरी शिवम् सौन्दर्यम्, (बिहार)

सर्वश्रेष्ठ पत्र

सा विद्या या विमुक्तये

सितम्बर अंक पढ़कर मुझे ऐसा लगा कि 'मूल्योन्मुख शिक्षा' पर केन्द्रित होने के कारण आपको धन्यवाद देना जरूरी है। 'सा विद्या या विमुक्तये' यानी वास्तविक शिक्षा वही है जो मनुष्य को सांसारिक बंधनों से मुक्त कर दे। इस अंक में प्रकाशित लेख 'मूल्योन्मुख शिक्षा का दर्शन' एवं 'मूल्योन्मुख शिक्षा—शिक्षकों की भूमिका' मनुष्य को नैतिक एवं चरित्रवान बनाने के लिए एक मील का पत्थर साबित होगा। निश्चय ही इस प्रकार के प्रयास हमारे एवं हमारे समाज के लिए एवं सफल जीवन बनाने के लिए एक मंत्र का काम करेंगे। आज जिस तरह समाज में मूल्यों में गिरावट आई है ऐसे समय में मूल्यों एवं मूल्योन्मुख शिक्षा पर चर्चा करना बहुत ही प्रासंगिक है।

—राजीव कुमार वर्मा, बी.एच.यू. (वाराणसी)

गूलर का फूल

सितम्बर अंक में दिए गए सभी लेख महत्वपूर्ण और ज्ञानवर्धक लगे। परंतु सबसे महत्वपूर्ण लेख 'मूल्योन्मुख शिक्षा' लगा जो 'गूलर का फूल' जैसा है।

'मूल्योन्मुख शिक्षा' वास्तव में अभी तक शैक्षणिक पाठ्यक्रम से दूर थी। इसके लिए एक दीर्घकालिक रणनीति बनानी होगी तभी मानव विकास हो सकता है। आज आवश्यकता संपूर्ण शिक्षा के मूल्यांकन की है। तोते की तरह ज्ञान न देकर हमें 'मूल्य' निर्धारित करना होगा।

अनुरोध है कि आने वाले अंकों में शिक्षा से जुड़े कुछ गंभीर और ऊर्जावान आलेख प्रस्तुत करें जिससे कुछ करने की प्रेरणा मिले।

—विनय कुमार शुक्ला, गोरखपुर (उ.प्र.)

कार्य योजना पर अमल करें

सितम्बर अंक पढ़ा। ओजोन परत में छेद बढ़ रहा है इससे कोई भी अनभिज्ञ नहीं। पर केवल हम लोग एक दिन का विशेष-दिवस मना लेते हैं। जरा भी उस पर अमल नहीं कर पाते। विगत दिनों की ही बात लें। 26 अगस्त से 4 सितम्बर के बीच जोहांसबर्ग में पृथ्वी सम्मेलन का आयोजन किया गया। वहां भी घोषणाएं एवं संकल्प किए गए। 65 पृष्ठों की कार्ययोजना को मंजूरी दी गई। क्या कोई राष्ट्र उस पर अमल करेगा?

जब भी कोई कार्ययोजना को असली जामा पहनाने की बात उठती है, गरीब व अमीर देश दो खेमों में बंट जाते हैं। पर्यावरण क्षरण में विकासशील देशों का भी हाथ है, इस बात को नकारा नहीं जा सकता।

वैसे तो सभी लेख प्रेरणादायक रहे, लेकिन स्वामी गोकुलानन्द के लेख से अंत:करण प्रफुल्लित हुआ। उदाहरण के लिए उस लेख के ये वाक्य—"आध्यात्मिक चेतना और पूर्ण समर्पण से प्रेरित आत्मबल ही दी जाने वाली शिक्षा को प्रभावी बना सकता है, कोरा उपदेश नहीं", "आध्यात्मिकता का विकास होने पर ही युवा पीढ़ी त्याग, सेवा, धर्म और कर्म जैसे महान आदर्शों का वास्तविक अर्थ समझ पाती है", आदि। आज शिक्षकों को अंदर-बाहर एक होना होगा। वर्तमान परिस्थितियों में उनका दायित्व और बढ़ गया है।

इसी तरह की जानकारी से युक्त हर अंक निकालते रहें ताकि पाठकों को कम दाम में अच्छी जानकारी मिलती रहे।

—कुमार दिवाकर, पूर्णियां (बिहार)

बड़ों की व्यस्तता : बच्चों का बोझ

○ मृदुला सिन्हा

मध्यम वर्ग के अधिकांश फ्लैटों में जब बच्चे स्कूल से लौटकर घर आते हैं, उनके स्वागत में न मम्मी, न पापा, न दादा, न दादी, कोई भी तो वहां नहीं होता। यही हाल आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्ग की झुग्गियों में भी है। वहां भी माताएं काम पर जाती हैं। बड़ी कोठियों में बच्चों की हालत और भी बुरी है। मम्मी-पापा वहां भी नहीं मिलते। जीरो से पांच वर्ष की अवस्था वाले इन शिशुओं की समस्याओं पर समय रहते विचार आवश्यक है। इनके बचपन का छिनना समाज के भविष्य के लिए घातक साबित होगा।

अपराह्न साढ़े तीन बजे का समय था अपने दफ्तर की व्यस्तताओं में थोड़े फुर्सत के क्षण मिल गए तो मैंने फोन नं. डायल किया।

मैंने पूछा—''कैसी हो? क्या खाया?'' थकी-थकी आवाज में एक नन्ही बच्ची बोली—''कुछ नहीं।''

''क्यों?''

''अभी तो स्कूल से आई हूं। मम्मी भी घर में नहीं हैं। पापा भी नहीं।''

वह इतनी थकी थी कि मुझसे बात तक नहीं करना चाहती थी। अपनी दादी से बात करने के लिए सर्वदा लालायित छह वर्षीया अपनी पौत्री 'समृद्धि' को मैं और परेशान नहीं करना चाहती थी। स्वयं जरूर परेशान हो उठी। सोचने लगी चार बजने को आए हैं। समृद्धि ने अभी पीठ पर से स्कूल का बैग भी नहीं उतारा होगा; जूते-मोजे और स्कूल ड्रेस नहीं बदली होगी; बिना हाथ-मुंह धोए, बिना खाना खाए टी.वी. देखने बैठ गई होगी। उसकी आया प्रीति बार-बार कह रही होगी—''समृद्धि, कपड़े बदलो। हाथ-मुंह धो लो। मैं लंच टेबल पर लगाती हूं।'' पर समृद्धि सुने तब तो। वह तो कार्टून के कथानक में डूबी होगी। मेरा मन और भी उचाट हो गया। सोचने लगी। चिंतित हुई कि छोटी-सी जान स्मृद्धि के मन में क्या-क्या विचार आते होंगे। मध्यम वर्ग के अधिकांश फ्लैटों में जब बच्चे स्कूल से लौटकर घर आते हैं, उनके स्वागत में न मम्मी, न पापा, न दादा, न दादी, कोई भी तो वहां नहीं होता।

यही हाल आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्ग की झुग्गियों में भी है। वहां भी माताएं काम पर जाती हैं। उनके बच्चे या तो स्कूल जाते ही नहीं, गए भी तो बीच में ही लौटकर आ जाते हैं। समय से भी लौटे तो क्या! बस्ता पटका और सड़कों पर खेलने निकल गए। झुंड बनाकर इधर-उधर घूमते रहे।

बड़ी कोठियों में बच्चों की हालत और भी बुरी है। मम्मी-पापा वहां भी नहीं मिलते। आयाएं होती हैं। मम्मी-पापा व्यापार संभालने में लगे हैं। यह किस्सा बड़े शहरों का है, जहां तीनों वर्गों के घरों की महिलाएं तेजी से बाहर जाने लगी हैं। जो कहीं नौकरी नहीं करतीं, वे भी किटी पार्टी या हाट-बाजार गई होती हैं। काम का बोझ उन पर भी अधिक ही है। कई कारणों से एकल परिवार व्यवस्था बढ़ती जा रही है। दादी-दादा, नानी-नाना का कम ही घरों में साथ रहना होता है।

इसलिए इन शहरों में 'वृद्धाश्रमों' और 'पालनाघरों' की आवश्यकता बढ़ रही है। पालनाघरों में न बच्चे खुश हैं, न वृद्धाश्रमों में वृद्ध। वृद्धों की बात फिर कभी। पर जीरो से पांच वर्ष की अवस्था वाले शिशुओं की समस्याओं पर समय रहते विचार आवश्यक है। इनके बचपन का छिनना समाज के भविष्य के लिए घातक साबित होगा।

जीरो से दो वर्ष और दो से चार वर्ष के बच्चों के लिए भी पालनाघरों की व्यवस्था की जा रही है। माताएं अपने नन्हो को सुबह-सुबह जैसे-तैसे तैयार करती हैं, पालनाघरों में छोड़ती हैं और दफ्तर या काम के अन्य स्थानों पर भागती हैं। ऐसे में मां-बाप की मन:स्थिति और स्वास्थ्य पर जो असर पड़ता है, वह तो विचारणीय है

ही परंतु बच्चों के नन्हे मन-मस्तिष्क और हृदय पर जो प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है और उस मानसिक स्थिति का उनके शारीरिक, सांवेगिक और बौद्धिक स्वास्थ्य पर जो प्रभाव पड़ रहा है वह चिंतनीय और विचारणीय है।

हम बातों-बातों में कह देते हैं—'आजकल बच्चे बहुत जिद्दी हो रहे हैं। मां-बाप का कहना ही नहीं मानते।' सच तो यह है कि बड़े शहरों में समय की कमी में हमें समझने-बूझने का समय ही नहीं है कि आखिर बच्चा चाहता क्या है। कभी-कभी समझ-बूझकर भी हम उनके मन की जरूरतों को टाल जाते हैं क्योंकि हमारे पास उनकी चाहत उनके मन से निकलवाने का समय ही नहीं होता। इसलिए एक छत के नीचे रहकर भी माता-पिता और बच्चों में दूरियां बढ़ती जा रही है।

हम गर्व के साथ यह भी कहते सुने जाते हैं—'इन दिनों बच्चों की जानकारियां कितनी बढ़ गई हैं। छोटी उम्र में ही दुनिया भर की जानकारियां।' हमारी ये उक्तियां हमें हुलसाती हैं, गुदगुदाती हैं। अभिमान से भर देती हैं कि हमारे बच्चे नन्ही उम्र में वह सब जानते हैं, जो हम आयु के तीन-चार दशक बिताकर भी नहीं जान पाए थे। प्रसन्नता की बात है। पर सिक्के का दूसरा पहलू भी है। और वह है उनका बचपन का छिन जाना। बचपन तो आखिर बचपन है। उसके अपने तकाजे हैं। गुण और दुर्गुणों के बीजारोपण का समय है। निश्चिंत एवं निश्छल रहने की आयु है। इस आयु में प्रौढ़ हो जाना खुशखबरी नहीं है। सिक्के का एक और पहलू भी है—वह है बच्चों की जानकारी के अनुरूप ही उनकी जिज्ञासा का भी बढ़ना। उन्हें जितनी जानकारी मिलती है, उनके मन में उतने ही प्रश्न भी उठते हैं। जाहिर है उन्हें उन प्रश्नों के उत्तर भी चाहिए। यदि प्रश्नों का समाधान नहीं होता तो बचपन से ही बच्चों के मन में गांठें पड़ जाती हैं। कुंठाएं उत्पन्न होती हैं। इतना ही नहीं, मां-बाप और शिक्षक-शिक्षिकाओं से प्रश्नों के उत्तर नहीं मिलते तो बच्चे गलत संगति में पड़ जाते हैं। वहां, जहां उनके कुंठित भाव, संवेग और प्रश्नों के उत्तर ही नहीं मिलते, अतृप्त इच्छाएं भी संतुष्ट होती हैं।

हमारे समाज के इन कर्णधारों को जन्म लेते ही मां की व्यस्तताओं को भुगतना पड़ता है। शहरों में हमारी जीवन-शैली शरीर, मन और बुद्धि की आवश्यकता के अनुसार नहीं बनी होती। हमारी ही बनाई हुई है, पर हमने इसमें 'पेट' यानी 'अर्थ' को प्रधानता दे रखी है। जीवन में अर्थ का अभाव नहीं होना चाहिए पर अर्थ का अतिशय प्रभाव भी जीवन को प्रभावित करता है। गर्भवती मांओं को जितना शारीरिक और मानसिक आराम चाहिए, उतना नहीं मिल पाता। उनकी भाग-दौड़ और व्यस्तता का सीधा असर गर्भस्थ शिशु पर पड़ता है। गर्भ में विकसित होते उसके शरीर और मन का विकास अवरुद्ध होता है।

बड़े शहरों में समय की कमी में हमें समझने-बूझने का समय ही नहीं है कि आखिर बच्चा चाहता क्या है। कभी-कभी समझ-बूझकर भी हम उनके मन की जरूरतों को टाल जाते हैं क्योंकि हमारे पास उनकी चाहत उनके मन से निकलवाने का समय ही नहीं होता। इसलिए एक छत के नीचे रहकर भी माता-पिता और बच्चों में दूरियां बढ़ती जा रही है।

नन्हे शिशु को जब मां का स्तनपान कराया जाता है तो मात्र उसका पेट ही नहीं भरता, मन भी भरता है। एक छाती का दूध पीते हुए, दूसरी छाती का निप्पल नन्ही मुट्ठी में पकड़े मां की आंखों और चेहरे के भाव-भंगिमाएं निहारते वह भरता जाता है, सुरक्षा का भाव बढ़ता जाता है उसके अंदर। वह मात्र पेट नहीं भरता, अघाता है। पर बड़े शहरों की बड़ी व्यस्तता में या तो मांएं दूध पिलाती ही नहीं, पिलाती भी हैं तो न स्वयं बच्चों से खेलती हैं, न उन्हें अघाने का अवसर देती हैं। न पेट भरता है, न मन अघाता है।

दरअसल, शिशु के मसूड़ों के विकास के अनुरूप ही उन्हें भोजन देने की परंपरा रही है। जिन नन्हो को पालनाघरों में भेज दिया जाता है, उनके मां-बाप को नहीं मालूम कि बच्चे ने क्या, कब और कैसे खाया? नींद भी पूरी कर सका अथवा बीच ही में जगा दिया गया कि मां के वापिस आने का समय हो गया है।

एक मध्यमवर्गीय महिला से मैंने पूछा—''अपने बच्चों को कहां छोड़कर बाजार-हाट जाती हो।''

''मैं अपने बच्चे को पालने में सुलाकर घर में ताला बंदकर आती हूं। अव्वल तो वह मेरे घंटे, दो घंटे बाद लौटने तक सोया ही रहता है। जग भी गया तो पालने में खेलता रहता है। रो भी लिया तो चुप हो जाता है। गिरता नहीं। अभी बहुत छोटा है न!''

वह मां संतुष्ट है। पर मुझे उसके बच्चे की विकास प्रक्रिया में असंतोष और असुरक्षा के बीज पड़ते नजर आते हैं।

नन्हे शिशु को हमेशा गोद में रखना आवश्यक नहीं। जहां तक हो उसे पालना या बिछावन, थोड़ा बड़ा हो तो फर्श पर ही सुलाना चाहिए ताकि वह सरकना, बैठना, उठना सीख सके। परंतु जब वह सोए से जगता है, टट्टी-पेशाब करता है, अविलंब बड़ों की उपस्थिति चाहिए। मैंने गांवों में देखा है कोई स्त्री चक्की में गेहूं पीस रही है, बर्तन मांज रही है, घर-आंगन लीप रही है या गृह कार्य के नाना जंजाल में फंसी है, बच्चे के रोने पर वहीं से आवाज लगाती है—'अभी आई। चार बर्तन और मांजने हैं, बस आई मेरे लाल।'

दूर से ही मां की आवाज सुन वह किलकारी भरने लगता है। आश्वस्त हो जाता है। यह आश्वासन नन्हे से नन्हे और बड़े से बड़े बच्चे को चाहिए। शहरी जीवन में नन्हा शिशु भले ही पालने से नहीं गिरता,

परंतु मल-मूत्र पर पड़े रहना उसके शरीर और मन के लिए हानिकारक है। एक समय था कि गांवों में अनपढ़ मांएं अपने बच्चों के रोने के भिन्न-भिन्न स्वर-ताल से उसकी आवश्यकता का अंदाजा लगा लेती थीं। भूख लगने, किसी का सान्निध्य प्राप्त करने, फलिया गीला होने, डर जाने अलग-अलग स्थितियों में रोने के अलग-अलग ताल-छंद मां समझती रही है। आज बच्चों को बाजार-हाट या पार्टियों में भी मांएं अपने साथ ले जाती हैं। उनकी साड़ियां, बच्चे के कपड़े या बाहर का सोफा या फर्श खराब होने के डर से उन्हें मोटा लंगोट (डायपर) पहनाती हैं। प्रथम तो नन्हे बच्चों के लिए डायपर का वजन ही आरामदेह नहीं होता। दूजे, वह इतना कसकर बांधा जाता है कि बच्चा असहज हो उठता है। डायपर उसके स्वास्थ्य के लिए भी उपयुक्त नहीं। खोलने पर कमर पर गहरे निशान पड़े होते हैं। इन सब प्रभावों से भी बुरा प्रभाव त्यागे गए मल-मूत्र को घंटों संजोए रखना पड़ता है। एक बार नहीं, दो-तीन बार भी मल-मूत्र त्याग सकता है। मम्मी भी क्या करे, व्यापारियों ने भी उनकी व्यस्तता और लाचारी देखकर डायपर तो ईजाद कर दिया, पर उसके दूरगामी परिणाम पर विचार नहीं किया। नन्हो को साथ ले जाकर मां तो बीच-बीच में डायपर बदल भी देती हैं, पर क्रेश या नर्सरी विद्यालयों में कौन बदलता है। पांच-छह घंटों तक बंधा रहता है डायपर। सुखाने का संस्कार है डायपर का। मल-मूत्र सोख लेता है, पर बच्चों के शरीर एवं मन पर गीला असर छोड़ जाता है।

बड़े शहरों में अधिकांश बच्चों के पेट सुबह-सुबह साफ नहीं होते। स्वास्थ्य का प्रथम नियम है सुबह शौच जाना। उपचार की कोई भी विधि हो, पेट साफ करने पर ही बल देती है। कहावत है—'पेट भारी तो सिर भारी।'

बच्चों को पॉटीपैन पर बैठाकर अक्सर माताएं कहती हैं—'जल्दी करो। जल्दी करो।' बच्चा जल्दी कैसे करे। डाक्टरों का कहना है कि मल-मूत्र त्यागने की इच्छा को बहुत देर तक रोके रखना और जबर्दस्ती त्यागने के लिए जोर लगाना, दोनों ही स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। मन पर दोनों स्थितियों का कुप्रभाव पड़ता है, वह अलग। छोटे-छोटे बच्चों को भी सिरदर्द और कब्ज की बीमारी शुरू हो जाती है। कुसमय और कुजगह मल-मूत्र त्यागने की जरूरत एक अलग समस्या बन जाती है।

इन समस्याओं के शारीरिक प्रभाव से भी अधिक प्रभाव मानसिक विकास पर पड़ते हैं। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि मल-मूत्र त्यागने की जरूरत को छुपाते या नियंत्रित करते-करते बच्चों में हीन-भाव ग्रंथि का उदय होता है। अपने मनोभाव भी छुपाने एवं नियंत्रित करने की आदत पड़ जाती है। दरअसल बच्चों के मन के भाव निकलवाने के लिए धैर्य भी चाहिए और उपयुक्त समय भी। एक और विशेष कारण है। वह यह कि बच्चों के पास इस उम्र तक न तो शब्द-भंडार विकसित हुए रहते हैं, न अपने शरीर के अंदर की गतिविधियां और अपने मनोभावों को समझने की शक्ति। इसलिए यदि उसका पेट दर्द कर रहा है, तो भी वह आसानी से उसे प्रकट नहीं कर पाता। कई प्रश्नों के उत्तर से बात समझ में आ पाती है। कभी-कभी नहीं भी। इसलिए छोटी-छोटी बातों के लिए भी डॉक्टर के पास जाना पड़ता है। बड़े शहरों के अस्पतालों की भीड़ देखकर अंदाजा लगाया जा सकता है कि कितनी संख्या में बच्चे बीमार हैं। अधिकांश अस्पताल जाते भी नहीं।

ऐसा नहीं है कि छोटे शहरों या गांवों में जहां व्यस्तता अपेक्षाकृत कम हैं, माताओं का बच्चों पर ही ध्यान केंद्रित होता है। वहां भी मध्यम वर्ग की माताएं घर के काम-काज में और आर्थिक दृष्टि से विपन्न परिवारों की स्त्रियां खेत-खलिहान में काम पर जाती हैं। परंतु उनके घर में दादा-दादी या परिवार के अन्य सदस्य होते हैं, कई बच्चे होते हैं, बड़ी बहन या बड़ा भैया छोटों की देख-रेख करते हैं। (यह अलग समस्या है—बच्चों से बच्चों की देख-रेख करवाना कहीं से भी उचित नहीं)। इस स्थिति में मनोवैज्ञानिक रुग्णता कम होती है। सुरक्षा का भाव रहता है। जब जहां चाहा, मल-मूत्र त्याग दिया। ऐसे बच्चे सभ्य समाज के निर्धारित स्टैंडर्ड पर भले ही खरे नहीं उतरते, पर उनमें अपेक्षाकृत मनोवैज्ञानिक बीमारियां कम होती हैं। दादी-नानियां छोटी-छोटी बीमारियों की दवा जानती हैं। अपने आस-पास की जड़ी-बूटियों से दवा बना कर खिलाती रहती हैं।

शहर के मध्यम वर्ग के परिवारों में एक ही बच्चा होता है। उसकी स्थिति उसके लिए अलग समस्या खड़ी कर रही है। दो बच्चे होने से आपस में खेलते-खाते, एक क्षण मार-पीट करते, दूसरे पल अपने सहोदर-सहोदर के प्रति अति प्यार दिखाते बच्चे बहुत कुछ सीखते हैं। मां-बाप के प्रति गुस्सा भी एक-दूसरे को मार-पीटकर निकाल लेते हैं। एक-दूसरे की चिंता भी करते हैं। वे छीनकर खाना जानते हैं तो बांटकर खाना भी सीखते हैं। पर शहर के उच्च-मध्यमवर्गीय घरों में काम-काजी माताओं की इकलौती संतानें ड्राइंग-रूम के गमले का फूल साबित हो रही हैं।

इन बच्चों पर एक और बड़ा बोझ आ पड़ा है। वह है मां-बाप की महत्वाकांक्षा का बोझ। सब अपने बच्चों को जन्मते ही पढ़ाने लगते हैं। प्रतियोगिता की जिंदगी है। बच्चों को बड़े से बड़ा ऑफिसर बनाना है। तुतली जबान में ही हिंदी, अंग्रेजी और अन्य भाषाएं सिखा देनी हैं। विद्यालय की प्रतियोगी-परीक्षा में उत्तीर्ण होना है। के.जी. या प्रथम वर्ग में नामांकन की परीक्षाओं में उत्तीर्ण होना कोई आसान बात नहीं। भोले-भाले नन्हो ने यदि रटाए हुए जवाब नहीं दिए तो पूछिए मत! माता-पिता की परेशानी कितनी बढ़ जाती है। और बच्चे भी उनकी बोझिलता ढोते हैं। उक्ति

(शेष पृष्ठ 38 पर)

अर्थशास्त्र का नोबेल दो अमेरिकियों को

अर्थशास्त्र के लिए इस साल का नोबेल पुरस्कार दो अमेरिकियों को मिला है। 68 वर्षीय अमरीकी डेनियल केनमेन तथा प्रिंसटोन विश्वविद्यालय में कार्यरत 75 वर्षीय इस्राइली वेरवोन एल स्मिथ को यह पुरस्कार आर्थिक विश्लेषण में मनोवैज्ञानिक शोध तथा प्रयोगशाला परीक्षणों के इस्तेमाल के लिए संयुक्त रूप से मिला है। उन्हें दस लाख डॉलर मिलेंगे।

रसायन के लिए नोबेल अमेरिका के जॉन फेन, जापान के कोइची तनाका और स्विट्जरलैंड के कुर्ट वीट्रिच को रसायनशास्त्र के लिए दिए जाएंगे। नोबेल ज्यूरी ने बताया कि यह पुरस्कार जैविक मैक्रोमालिक्यूल के अध्ययन जैसे प्रोटीन के अध्ययन के लिए एक नवीनतम विश्लेषणात्मक प्रक्रिया खोजने के लिए दिया गया है। प्रोटीन का विस्तृत अध्ययन जीवन की प्रक्रिया को समझने में सहायक होगा। स्वीडिश रॉयल एकेडमी ऑफ साइंस के अनुसार बायोमोलिक्यूलर अनुसंधान ने नवीनतम औषधियों के विकास में क्रांति ला दी है। यह खाद्य नियंत्रण तथा प्रोस्टेट एवं छाती के कैंसर की जांच में सहायक सिद्ध हुआ है। पुरस्कार की आधी राशि यानी 1.07 मिलियन डॉलर फेन और तनाका को संयुक्त रूप से मिलेगी और शेष आधी राशि वीट्रिच को मिलेगी।

STD. IX
is where your child's future begins.

Do you see a budding engineer – or perhaps a doctor – in your ninth grader? Do you worry about his or her future? Public exams, college admissions, graduation, a career... the very thought of what lies ahead can be overwhelming.

No one understands that better than Brilliant. Which is why our Professors have created two very special courses for Students of Stds. IX and X.

TARGET IIT ^ MBBS

Target-IIT and Target-MBBS.
Firm beginnings for happy endings.

Brilliant's unique Target Courses are – as their names suggest – especially created for students whose long term aim is to try for Engineering or Medicine. They build, in each child, the foundation, the logical, problem-solving approach, the confidence and the attitude so essential to succeeding in difficult competitive exams. They pave a solid pathway for those who are serious about preparing for IIT-JEE or Medical Entrance, after Std. XII. And more importantly, they bring alive science and maths in a way that awakens and inspires the latent scientist – or doctor – in each child. This results, quite naturally, in better performance in the Std. X public exams.

To know more about Brilliant's Courses – Call, write, fax or e-mail

BRILLIANT® TUTORIALS

You can't prepare better

12, Masilamani Street, T. Nagar, Chennai 600 017.
Phone: 044-4342099, Fax: 044-4343829
email:enquiries@brilliant-tutorials.com

बाल साहित्य : मौजूदा परिदृश्य और चुनौतियां

○ प्रकाश मनु

बाल साहित्य की चर्चा आते ही मन छलांगें लगाकर बचपन की यादों में पहुंच जाता है। शायद छठी कक्षा में था जब पहले-पहल बच्चों की पत्रिका 'चंदा मामा' के दर्शन हुए थे। उस पत्रिका को पढ़कर मैं किस कदर रोमांचित हुआ था, कह नहीं सकता। तब पहली बार समझ में आया था कि जो किताबें हम पाठ्यक्रम में पढ़ते हैं, उनके अलावा भी एक बड़ी दुनिया है ज्ञान-विज्ञान की, और उसे जानना बड़े आनंद की वस्तु है।

मुझे याद पड़ता है कि लगभग दीवानों जैसी मेरी हालत थी। 'चंदा मामा' के एक अंक में एक समूचा उपन्यास छपा था। शायद कोई तिलिस्मी यानी रहस्य-रोमांच का उपन्यास रहा होगा। उसे आधा पढ़ चुका था। फिर किसी काम से बाजार जाना पड़ा। तो मुझे याद है कि पूरे रास्ते मैं उस उपन्यास को पढ़ता गया था। रास्ते में इक्का, तांगे, रिक्शा, मोटर-गाड़ियां और पैदल चलते लोगों की अपार भीड़। पर मेरे लिए शायद इनमें से किसी चीज का अस्तित्व नहीं था। मैं पूरे रास्ते मजे में वही उपन्यास पढ़ता गया और आया। आज सोचता हूं तो झुरझुरी होती है। इतनी भीड़-भाड़ में अगर मेरा एक भी पैर गलत पड़ जाता तो....?

तब की तुलना में आज का बाल साहित्य देखें तो लगता है कि स्थिति एकदम बदल गई है। ढेरों पत्रिकाएं नजर आती हैं। ढेरों एक से एक खूबसूरत किताबें। हिंदी में आज जितनी किताबें बाल साहित्य की छपती हैं, उतनी शायद बड़ों के लिए नहीं।

इनमें कुछ किताबें तो इतनी खूबसूरत हैं कि उन्हें देखकर फिर से बच्चा बन जाने को जी करता है। एक खास बात यह है कि अब बच्चों के माता-पिता खुद उन्हें किताबें या पत्रिकाएं खरीदकर देते हैं। वे समझ गए हैं कि बाल साहित्य बच्चे के संतुलित विकास के लिए जरूरी है। बच्चों को अपने पाठ्यक्रम की किताबों के अलावा कुछ और नहीं पढ़ना चाहिए और जो बच्चे ऐसा करते हैं वे अपना समय बर्बाद करते हैं, यह धारणा उनमें तेजी से टूट रही है। इसका स्वागत किया जाना चाहिए।

इसी तरह हिंदी बाल साहित्य की किताबें बिकती नहीं हैं, यह धारणा गलत है। इधर हिंदी में बाल कहानियों और कविताओं की किताबें न सिर्फ बेहद आकर्षक रूप में नजर आ रही हैं, उन्हें पढ़ने वाले उत्साही पाठकों का भी एक बड़ा वर्ग उभर रहा है। मैं समझता हूं कि यह एक बेहद महत्वपूर्ण परिवर्तन है और आगे बनने वाले समाज की नब्ज को पढ़ने-समझने के लिहाज से एक जरूरी संकेत भी है।

देखा गया है कि वे बच्चे जिन्हें स्कूलों में अंग्रेजी माध्यम की किताबें पढ़नी पड़ती हैं, जब अपने मन की किताब ढूंढ़ने लगते हैं तो हिंदी की किताब ही उनके हाथ में नजर आती है। इसलिए कि तमाम बंदिशों से परे उन्हें यहां वह भाषा मिलती है जिसमें वे अपने मन की बात कह-सुन पाते हैं; एक भाषा जिससे वे खेल सकते हैं और नि:संकोच बतिया सकते हैं, जैसे कि अपनी मां से। बच्चे इन कविता-कहानियों को पढ़ते ही नहीं हैं, बल्कि इनके आगे अपनी इच्छा,

इधर हिंदी में बाल कहानियों और कविताओं की किताबें न सिर्फ बेहद आकर्षक रूप में नजर आ रही हैं, उन्हें पढ़ने वाले उत्साही पाठकों का भी एक बड़ा वर्ग उभर रहा है। यह एक बेहद महत्वपूर्ण परिवर्तन है और आगे बनने वाले समाज की नब्ज को पढ़ने-समझने के लिहाज से एक जरूरी संकेत भी है।

आकांक्षा और सपनों का वह पिटारा खोलकर बैठ जाते हैं जो वरना कभी संभव ही नहीं था। यह 'जादू' अपनी भाषा में ही संभव है।

बचपन में पढ़ी किताबों और रचनाओं का प्रभाव किसी व्यक्ति के जीवन में कितना गहरा होता है, मैं नहीं समझता इस पर हमारे यहां कोई ढंग का अध्ययन हुआ है। लेकिन कभी इस तरह का अध्ययन हुआ तो समझ में आएगा कि बचपन में पढ़ी किताबों का असर अंत तक हमारे मन से नहीं उतरता और घुट्टी की तरह हमारे मन और व्यक्तित्व को मजबूत करता है। इस लिहाज से बचपन में पढ़ी दिनकर की....'चांद का कुर्ता' कविता की पंक्ति ''हठ कर बैठा चांद एक दिन, माता से यह बोला; सिलवा दे मां, मुझे ऊन का मोटा एक झंगोला....'' द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी की ''मुन्नी-मुन्नी ओढ़े चुन्नी, गुड़िया खूब सजाई....'' का असर आज तक कम नहीं हुआ। ऐसे ही अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की कविता थी 'एक बूंद' जिसने मेरा समूचा जीवन बदल दिया। आज सोचता हूं तो लगता है ये ही कविताएं थीं जो न सिर्फ मेरे भीतर लेखक होने के बीज बो रही थीं बल्कि मेरे और मेरी पीढ़ी के लेखकों के व्यक्तित्व को साहित्य के गहरे संस्कार से भी जोड़ रही थीं।

स्वस्थ मनोरंजन

आज के समय और आज की दुनिया पर नजर डालें तो साफ समझ में आएगा कि कल की तुलना में आज के बच्चे के सामने मुश्किलें कहीं अधिक हैं और शायद इसीलिए आज बाल साहित्य की जरूरत कहीं अधिक है। आज के बच्चों के नाजुक कंधों पर पढ़ाई और बस्ते का बोझ कितना बढ़ गया है, यह देखें तो एक तरह का अपराध-बोध सा होता है जो तब और बढ़ जाता है जब हम यह देखते हैं कि बच्चों को स्वस्थ मनोरंजन देने की सामाजिक जिम्मेदारी में हमने एक अक्षम्य लापरवाही बरती है। अक्सर बच्चे मजबूरी में जिन धारावाहिकों को देखते पाए जाते हैं, उनका असर उन पर कैसा पड़ रहा होगा, और बड़े होने पर उनमें किस तरह की कुंठाएं और विकृतियां जन्म लेंगीं, इसकी कल्पना से ही हृदय कांप जाता है। इसी तरह बच्चों के लिए स्वस्थ और रोचक फिल्में बनाने की दिशा में भी हमारे यहां अधिक कहां सोचा गया है।

फिर इससे भी बड़ा संकट। दादी-नानी की कहानियां जो सदा से बच्चों की 'दोस्त' रही हैं, मानो नए वक्त की नई आधुनिकता के कुहासे में खोती जा रही हैं। पहले यह होता था कि मां-बाप से ज्यादा बच्चे दादी-दादा, नानी-नाना से हिले-मिले रहते थे। इसीलिए बचपन में सुनी दादी-नानी की कहानियों का असर कहीं अधिक और गहरा पड़ता था। बच्चे खेल-खेल में इन कहानियों से बहुत कुछ सीख लेते थे। फिर इन कहानियों का एक अलग तरह का सर्जनात्मक सुख तो होता ही था। ये कहानियां रोज की जानी-पहचानी दुनिया से अलग एक कल्पना की दुनिया में ले जाती थीं और कल्पना के नए-नए पट खोलती थीं। पर अब एकल परिवारों की सपाट और संकरी दुनिया ने बच्चों की उस मीठी सर्जनात्मक दुनिया का बहुत सा रहस्य-रोमांच उनसे छीन लिया है।

ऐसे में बाल साहित्य के आगे चुनौती बढ़ी है। और इसी कारण बाल साहित्य का महत्व आगे भी दिनोंदिन बढ़ेगा इसमें शंका नहीं। अगर सीधे अल्फाज में कहूं तो एक बाल-लेखक को अब सिर्फ लेखक नहीं, बल्कि 'दादी-नानी' बनकर भी लिखना पड़ेगा। आखिर बालकों के जीवन में जो रिक्तता आई है, उसे भरने की सबसे पहली जिम्मेदारी और सबसे प्रमुख जिम्मेदारी बाल साहित्य की ही है न!

पिष्टपेषण

अब सवाल यह है—और यह सर्वाधिक महत्व का सवाल है कि क्या हमारा बाल साहित्य इस चुनौती का मुकाबला कर पाएगा?

निस्संदेह आज हिंदी में बाल साहित्य बहुतायत में लिखा जा रहा है। बच्चों के लिए छपने वाली किताबों और पत्रिकाओं के अलावा अखबारों के पन्नों पर भी बच्चों के लिए खूब कविता-कहानियां छपती हैं। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि आज बच्चों के साहित्य के नाम पर जो कुछ सामने आ रहा है, उसका एक बड़ा हिस्सा

महज पिष्टपेषण है। कहानियों में लोककथाओं की भद्दी नकल को ही बहुत से बाल कथाकारों ने बाल कहानियां समझ लिया है। कविताओं में इतिवृत्तात्मक कविताओं और मौसम का बोलबाला है, मानो हमारा बाल कवि किसी ऊंचे टीले पर खड़ा होकर किसी हरकारे की तरह आवाज लगा रहा है—'सर्दी आई...सर्दी आई...!' या 'गरमी आई....गरमी आई....!' क्या इसे बाल साहित्य कहेंगे?

यह ठीक है कि लोककथाओं का अपना महत्व है, पर उन्हीं सुनी-सुनाई लोककथाओं को बार-बार नीरस ढंग से दोहराकर हम आगे नहीं बढ़ सकते। इसी तरह भारत जैसे देश में यकीनन मौसम की छटाएं और दृश्यावलियां खूबसूरत हैं पर जब तक इन खूबसूरत मौसमों की खूबसूरती को बिल्कुल बच्चा बनकर, मोहक अंदाज में बच्चों के आगे नहीं रखा जाएगा तो बच्चे उनका आनंद कैसे ले पाएंगे?

कहानियां

यहीं इस चर्चा को इस बात की ओर मोड़ना उचित होगा कि बाल साहित्य के मौजूदा परिदृश्य में आखिर वे कौन सी कविता-कहानियां, लेख, नाटक, एकांकी वगैरह हैं जिन्हें आज का 'जेनुइन' बाल साहित्य कहा जा सकता है? बाल साहित्य का मूल्यांकन आखिर किस तरह की रचनाओं से हो? इस लिहाज से पिछले कुछ बरसों में पढ़ी हुई हजारों कहानियों में से जो कहानियां मेरे मन पर नक्श हो गईं और जो मुझे सचमुच आज की कहानियां लगती हैं, उनका जिक्र करना जरूरी लग रहा है।

इनमें से एक कहानी वैजयंती टोणपे की दीवाली पर लिखी गई कहानी है जिसमें दीवाली पर एक बच्चा पास की झुग्गी-झोपड़ियों के बच्चों को घर पर दावत देता है। उस वक्त उन दीन-हीन समझे जाने वाले बच्चों की आंखों में जो चमक है, वही कहानी का असली मर्म है! मो. अरशद खान की किराए के घर को लेकर लिखी गई एक कहानी भी बड़ी खूबसूरत है। पुराने किराएदार चले गए, नए आ गए। पर नए किराएदारों का बच्चा पुराने किराएदारों के बच्चों की मन ही मन कल्पना में जो तस्वीर खड़ी करता है, उसका चित्रण अद्भुत है।

मुकेश नौटियाल की 'अन्ना का स्कूल' एक मार्मिक कहानी है जिसका अंत बेहद करुण है। गांव में भरे-पूरे संयुक्त परिवार में रहने वाला सभी का लाडला अन्ना शहर आता है और वहां उसे स्कूल में डाल दिया जाता है। उस स्कूल में अन्ना का मन किस कदर उदास है, किस तरह वह अकेले में चाचा-चाचियों, दादी को याद करके बड़बड़ाया करता है! यहां तक कि स्कूल के सामने के पेड़ों में से एक बूढ़े पेड़ का नाम उसने 'दादी' रख छोड़ा है। बाकी के पांच छोटे पेड़ों को चाचा मानकर वह उनसे देर-देर तक कैसे अपने सुख-दुख की चर्चा किया करता है, इसका वर्णन कंपा देने वाला है!

देवेंद्रकुमार की 'रिक्शा डाक्टर', क्षमा शर्मा की 'पप्पू चला ढूंढ़ने शेर', ओमप्रकाश कश्यप की 'नन्ही का बटुआ', गोपीचन्द श्रीनागर की 'पानी वाली लड़की', जयप्रकाश भारती की 'ढोल', डा. सुनीता की 'करुणा का बस्ता' ऐसी कहानियां हैं जिनका मन पर गहरा असर पड़ता है। इसलिए कि इन कहानियों में न सिर्फ बात नई है, बल्कि बात कहने का अंदाज भी नया है।

हरिकृष्ण देवसरे की कई ऐसी कहानियां हैं जो आज के बच्चों के मन में अंधविश्वासों से लड़ने का हौसला भरती हैं। निःसंदेह ये सभी कहानियां एक जैसी अच्छी नहीं हैं। कुछ कहानियां बड़े क्रिएटिव अंदाज में लिखी गई हैं तो कुछ टाइप्ड चरित्रों पर लिखी गई फार्मूलाबद्ध कहानियां हैं। तो भी देवसरे की कहानियां बेशक ऐसी कहानियां हैं जिनकी गंभीरता से पड़ताल की जानी चाहिए।

एक बात और। कुछ अरसा पहले 'परी कथाएं बनाम आधुनिक कहानियां' का तीखा विवाद बाल साहित्य में चला था। यह विवाद अब थम गया लगता है क्योंकि इधर बाल साहित्य में खासा खुलापन आया है। कहानी कहने की सभी तरकीबों या तकनीकों को स्वाभाविक मानकर उनमें नए जमाने की नई से नई बात कहने का चलन बढ़ा है। इस लिहाज से उषा महाजन, सविता चड्ढा, रत्नप्रकाश शील आदि की एक से एक खूबसूरत परी कथाएं पढ़ीं जो आज के जीवन यथार्थ के एकदम नजदीक हैं और बच्चे के मन को भी गहराई से छूती हैं। यह बात इसलिए महत्वपूर्ण है कि इससे परी कथा और आधुनिक कहानी के बीच का विवाद खुद-ब-खुद निरर्थक साबित हो गया है।

कविताएं

इसी तरह क्या उन कविताओं को जो सचमुच आज की कविताएं हैं, आज के बच्चे के मन और सपनों-आकांक्षाओं की कविताएं हैं, रेखांकित किया जा सकता है?

इस लिहाज से सबसे पहले जिस कविता का ध्यान आता है, वह है आज के दिग्गज बाल कवि दामोदर अग्रवाल की 'बिजली' पर लिखी गई कविता। पर यह आसमान में कड़कने वाली उस बिजली की कविता नहीं है जिसका 'चालीसा' हर कोई पढ़ता है। यह उस बिजली की कविता है जिसके चले जाने पर हमारे सब काम रुक जाते हैं। दामोदर अग्रवाल उससे मानो शिकायत करते हुए कहते हैं, ''बड़ी शरम की बात है बिजली, बड़ी शरम की बात...!''

दामोदर अग्रवाल की एक और मजेदार कविता है, ''अगर मुझे मिल जाए एक पैसा....।'' इस कविता की खासियत यह है

कि इसमें एक पैसा गीत के तरन्नुम में ढलते-ढलते आखिरकार इतना बड़ा हो जाता है कि दामोदर उस एक पैसे से सारी दुनिया को बदल डालना चाहते हैं। 'कोई ला के मुझे दे' भी दामोदर अग्रवाल की ऐसी कविता है जो एक बार सुनते ही हमेशा-हमेशा के लिए आपके मन पर छा जाती है।

रमेश तैलंग की ''निक्का पैसा कहां चला....'' में यहां से वहां छलांगें लगाता नन्हा, नटखट 'पैसा' है जो बड़े-बड़े अचरज भरे खेल खेलता है। देवेंद्र कुमार सड़कों की सफाई करने वाली जमादारनी को 'सड़कों की महारानी' कहते हैं और फिर उनका अलबेला गीत इन शब्दों में फूट पड़ता है, ''सुनो कहानी रानी की, सड़कों की महारानी की....!''

इसी तरह डा. शेरजंग गर्ग हमारे दौर के सिरमौर कवियों में से हैं और उन्होंने कुछ इतनी खूबसूरत कविताएं लिखी हैं जिन्हें पढ़कर सीखा जा सकता है कि आज की बाल कविताएं कैसी होनी चाहिए! दीवाली पर लिखी गई डा. शेरजंग गर्ग की मशहूर कविता है—'नए उजाले जिंदाबाद....', तो नए साल पर उनका स्वर और अंदाज कुछ ऐसा खिलंदड़ा है—''छुकछुक चले हमारी गाड़ी नए साल में, भैया की बढ़ जाए दाढ़ी नए साल में....।'' डा. गर्ग के कुछ शिशुगीत भी लाजवाब हैं और दुनिया की किसी भी भाषा के शिशुगीतों से टक्कर ले सकते हैं। इधर डा. शेरजंग गर्ग ने 'अगर पेड़ पर लगते पैसे', 'तीनों बंदर, महा धुरंधर' जैसी कुछ कविताएं एकदम लीक से हटकर लिखी हैं।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना उन बाल कवियों में हैं जिन्होंने हिंदी के बालगीतों को जमीन पर चलने के अलावा कभी-कभार तूफान में उड़ना भी सिखलाया। उनकी मशहूर बाल कविता है—''इब्न बतूता पहन के जूता, निकल पड़े तूफान में; थोड़ी हवा नाक में घुस गई, घुस गई थोड़ी कान में...!'' उनकी एक और कविता आने वाले वक्तों में बिल्ली के बच्चों को भी 'अफसर' बना देती है क्योंकि उन्होंने किताबों में जन्म लिया है—''किताबों में बिल्ली ने बच्चे दिए हैं, ये बच्चे बड़े होकर अफसर बनेंगे....।'' भारतीय लोकतंत्र की इस जनपक्षधरता पर कि 'जो योग्य है, उसे आगे आने का पूरा हक है', कितना गहरा और सच्चा विश्वास है इस कविता में!

इसके अलावा बालस्वरूप राही, योगेंद्रकुमार लल्ला, कन्हैयालाल मत्त भी ऐसे कवि हैं, बाल साहित्य में जिनके काम और योगदान को ठीक-ठाक समझे बगैर आप बाल साहित्य का सही मूल्यांकन नहीं कर सकते। इनमें कन्हैयालाल मत्त ने परंपरागत भारतीय खेल-तमाशों पर जैसी जिंदादिल कविताएं लिखी हैं, वैसी किसी और ने नहीं लिखीं। अभी हाल में मत्त जी की खिलंदड़ी कविताओं का एक प्यारा सा संग्रह आया है—'चल भई काके' नाम से। बानवे बरस के कवि मत्त जी ने इस संग्रह में बाल कविताओं का जो सुर और ठाठ बांधा है, वह देखने, पढ़ने और बार-बार गुनगुनाने की चीज है।

> ***एक बड़ी चुनौती आज ढेरों की संख्या में लिखे जा रहे बाल साहित्य में से अच्छे और सार्थक बाल साहित्य की पहचान की है। अगर ऐसा न किया गया तो सबसे बड़ा खतरा यह होगा कि धंधेबाज लेखकों द्वारा थोक में लिखा जा रहा दोयम दर्जे का बाल साहित्य ही बाल साहित्य के रूप में पहचान बना लेगा।***

बाद की पीढ़ी के बाल कवियों में कृष्ण शलभ, यश मालवीय, श्याम सुशील, रमेश आजाद, उषा यादव आदि के नाम तत्काल याद आ रहे हैं। इधर उभरे एकदम नए कवियों में मो. फहीम, मो. साजिद खान, किशोरकुमार कौशल, सूरजपाल चौहान तथा रचना सिद्धा के नाम अलग से पहचान में आते हैं।

रमेशचंद्र शाह, नवीन सागर, सफदर हाशमी, राजेश जोशी, विनय दुबे वे कवि हैं जिन्होंने अपने नए 'मुहावरे' से बाल कविता के विन्यास को विस्तार दिया है।

अन्य विधाएं

और अब अन्य विधाएं—बच्चों के लिए कल्पनाशीलता और रोमांच से भरपूर उपन्यास, नाटक, रोचक लेख, वैज्ञानिक साहित्य। साफ शब्दों में कहा जाए तो इस क्षेत्र में हालत अभी बहुत अच्छी नहीं है, पर ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि इन विधाओं में स्तरीय काम बिल्कुल नहीं हुआ। हरिकृष्ण देवसरे ने दुनिया के प्रसिद्ध वैज्ञानिकों की जीवनियां और उनके रोचक प्रसंगों पर किताबें लिखी हैं। उपन्यासों में पंकज बिष्ट का 'गोलू और भोलू', देवेंद्रकुमार का 'चिड़िया और चिमनी' इधर लिखी गई अद्भुत कृतियां हैं। बल्लभ डोभाल, हरिकृष्ण देवसरे, क्षितिज शर्मा आदि कथाकारों ने भी बाल उपन्यास लिखे हैं पर इस क्षेत्र में अभी काम की अनंत संभावनाएं सामने हैं। बच्चों के लिए छोटे-छोटे मजेदार नाटक, मजेदार हास्य कथाएं—इन क्षेत्रों में भी अभी खुला मैदान सामने पड़ा है और बहुत काम करने की गुंजाइश है। इसी तरह बच्चों के लिए अच्छी हास्य कथाएं लिखी जाएं जो उन्हें गुदगुदाएं। खेल-खेल में सीख भी दें। बच्चे सीधे-सीधे उपदेश पसंद नहीं करते और इससे बचा जाना चाहिए।

शिशु साहित्य और किशोर साहित्य की जमीनें भी बाल साहित्य से सटी हुई हैं और इनमें अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। खुशी की बात यह है कि किशोरों के

(शेष पृष्ठ 19 पर)

तालिका-1

बच्चों के कल्याण और विकास हेतु संचालित प्रमुख योजनाएं/कार्यक्रम

कार्यक्रम/योजना का नाम	प्रारंभ होने का वर्ष	प्रमुख उद्देश्य	अन्य विवरण
बाल पुरस्कार योजना	1957	असाधारण सूझ-बूझ वाले उत्कृष्ट बच्चों को प्रोत्साहित करना।	असाधारण सूझ-बूझ और बहादुरी दिखाने वाले बच्चों को राष्ट्रीय पुरस्कार प्रतिवर्ष गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर प्रधानमंत्री द्वारा दिए जाते हैं। दूसरे राष्ट्रीय बाल पुरस्कार 4 से 15 वर्ष के बच्चों को पढ़ाई-लिखाई, कला, संस्कृति, खेलकूद आदि में उत्कृष्ट उपलब्धियों के लिए वर्ष 1996 से प्रतिवर्ष दिए जाते हैं।
समन्वित बाल विकास योजना	1975	0-6 आयुवर्ग के बच्चों तथा उनकी माताओं को पूरक पोषाहार, टीकाकरण, स्वास्थ्य जांच, परामर्श तथा स्कूल पूर्व शिक्षा उपलब्ध कराना।	6 वर्ष से कम आयु के 16 करोड़ बच्चों में से 2.5 करोड़ बच्चों को सभी आवश्यक सुविधाएं प्रदान की गई हैं।
सार्वभौमिक टीकाकरण कार्यक्रम	1985	टीके से रोकी जा सकने वाली छः बीमारियों से शिशुओं और बच्चों को बचाकर बाल मृत्यु दर में कमी लाना।	वर्ष 1985 से 1990 के दौरान यह कार्यक्रम तीव्र गति से चलाया गया। यह कार्यक्रम पूरे देश में चलाया जा रहा है।
बेसहारा बच्चों हेतु समन्वित कार्यक्रम	1992	बेसहारा बच्चों को अभावग्रस्तता, उपेक्षा, उत्पीड़न और शोषण से मुक्ति दिलाना।	इस कार्यक्रम के अंतर्गत बेसहारा बच्चों को आवास, पोषण, स्वास्थ्य रक्षा, साफ-सफाई, सुरक्षित पेयजल, शिक्षा, मनोरंजन के साधन उपलब्ध कराने हेतु सरकार द्वारा स्वयंसेवी संगठनों को आर्थिक सहायता उपलब्ध कराई जाती है।
राष्ट्रीय शिशु सदन योजना	1994	गरीब, कामकाजी/बीमार माताओं के बच्चों की दिन में देखभाल, पूरक पोषाहार, स्वास्थ्य की देखरेख, मन बहलाव आदि की व्यवस्था करना।	इस योजना हेतु मार्च, 1994 में 19.90 करोड़ की राशि से राष्ट्रीय शिशु सदन कोष का गठन किया गया। इससे वर्तमान में 14,925 शिशु सदन चल रहे हैं जिनसे 3.73 लाख बच्चे लाभान्वित हो रहे हैं।
पल्स पोलियो योजना	1995	0-5 वर्ष आयु के सभी बच्चों को पोलियो निरोधी दवा पिलाकर उन्हें पोलियो मुक्त करना।	इसके प्रत्येक दौर में करीब 16 करोड़ बच्चों को पोलियो की दवा पिलाई गई है।
मध्यान्ह भोजन योजना	1995	सरकारी एवं सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों में कक्षा 1 से 5 के विद्यार्थियों को दोपहर के भोजन की व्यवस्था से उन्हें आवश्यक पोषण प्रदान करना।	15 अगस्त, 1995 से लागू इस योजना में प्रतिवर्ष लगभग 30 लाख टन तक अनाज आवंटित किया जा रहा है।
बालिका समृद्धि योजना	1997	गरीबी रेखा के नीचे के परिवारों में 15 अगस्त, 1997 के बाद जन्मी बालिकाओं को शैक्षिक सहायता तथा उनकी माताओं को जन्म के समय अनुदान राशि उपलब्ध कराना।	2 अक्तूबर, 1997 से लागू इस योजना को पूरे देश में लागू किया गया है।
उदिशा योजना	1997	स्वास्थ्य, पोषण, बाल्यावस्था पूर्व शिक्षा और माता-पिता को प्रोत्साहन देकर बच्चों का सर्वांगीण विकास करना।	विश्व बैंक की सहायता से संचालित इस प्रशिक्षण कार्यक्रम को देश के चुने हुए क्षेत्रों में संचालित किया गया है।
प्रजनन एवं बाल स्वास्थ्य कार्यक्रम	1997	सुरक्षित मातृत्व एवं बच्चों के स्वास्थ्य हेतु सभी आवश्यक व्यवस्थाएं सुनिश्चित करना।	15 अक्तूबर, 1997 से लागू इस कार्यक्रम को क्षेत्र विशेष की आवश्यकताओं के हिसाब से अलग-अलग उपादानों का आबंटन किया गया है।
भाग्यश्री बाल कल्याण पोलिसी योजना	1998	18 वर्ष तक बालिकाओं को नियमित वित्तीय सहायता प्रदान कर (जिनके माता-पिता की आयु 60 वर्ष के ऊपर है) सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना।	18 अक्तूबर, 1998 से प्रारंभ की गई यह योजना अभी प्रारंभिक तौर पर ही संचालित हो पाई है।
किशोरी शक्ति योजना	2000	पढ़ाई छोड़ देने वाली 11 से 18 आयु वर्ग की किशोरियों को आत्मनिर्भरता की ओर उन्मुख करना।	इस योजना के अंतर्गत किशोरियों की स्वास्थ्य जांच, उपचार पोषण तथा उन्हें आर्थिक रूप से निर्भर बनाने का प्रयास किया जाता है। दसवीं योजना के अंत तक यह कार्यक्रम 2000 प्रखंडों में लागू हो जाएगा।

बौद्धिक विकास के संदर्भ में संसार के सभी देशों की सरकारों, संगठनों और सामाजिक संस्थाओं से जुड़े लोगों का विशेष रूप से ध्यानाकर्षण करने के लिए 1979 को 'अंतर्राष्ट्रीय बाल वर्ष' के रूप में मनाया गया। विशेष रूप से इसके बाद भारत में भी बच्चों के विकास के लिए कई प्रकार के विशेष कार्यक्रम और योजनाएं लागू की गईं। बच्चों के अधिकारों की सुरक्षा हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा द्वारा 20 नवंबर, 1989 को बच्चों के अधिकार संबंधी प्रस्ताव स्वीकार किया गया। इस सम्मेलन का उद्देश्य बच्चों को कहीं भी उनके शोषण, दुरूपयोग और घृणा से मुक्ति दिलाना था। इसमें किए गए प्रावधानों की 1990 में आयोजित विश्व बाल सम्मेलन में विस्तार से चर्चा भी हुई और प्रत्येक बच्चे को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक अधिकार प्रदान करने पर बल दिया गया। 8-10 मई, 2002 की अवधि में भी बच्चों के विकास संबंधी मामलों पर विचार करने तथा उपयुक्त रणनीति निर्धारित करने हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा विशेष महासभा बुलाई गई। इस सभा में 170 देशों के प्रतिनिधि-मंडलों द्वारा भाग लिया गया। संयुक्त राष्ट्र के तत्वावधान में आयोजित इस महासभा द्वारा बच्चों के विकास हेतु एक 15 वर्षीय कार्यक्रम की रूपरेखा निर्धारित की गई। इस सत्र की एक विशेषता यह रही कि इसमें पहली बार बच्चों ने खुद अपनी जमात का प्रतिनिधित्व किया। इस सम्मेलन में बच्चों के विकास की जो रूपरेखा तैयार की गई उस पर अमल करने के लिए जितनी धनराशि की आवश्यकता होगी, उसे विशेष रूप से विकासशील देश खर्च कर पाने की स्थिति में नहीं है जो एक कटु सत्य है।

विश्व के अधिकांश विकासशील देशों में न केवल शिशु मृत्युदर अधिक है बल्कि बच्चों में कुपोषण, अशिक्षा, बीमारियां तथा मूलभूत अधिकारों का हनन आम बातें हैं। इसमें से कई देश गृहयुद्ध, एड्स जैसे महामारियों तथा पर्यावरण-प्रदूषण से जूझ रहे हैं। कल का भविष्य ये बच्चे दुनिया के ऐसे देशों में पौष्टिक भोजन, स्वच्छ पेयजल और रोगनिरोधी दवाइयों के अभाव में अकाल मृत्यु का ग्रास बन जाते हैं। दुनिया भर में प्रतिदिन लगभग 5,500 बच्चे अकाल मृत्यु के शिकार होते हैं। इनमें से करीब 20 लाख बच्चे हर वर्ष आंत्रशोध की बीमारियों से मरते हैं। वे शिक्षा से भी प्राय: वंचित रह जाते हैं और असमय रोजी-रोटी कमाने की दौड़ में लगकर यौन तथा आर्थिक शोषण की दोहरी त्रासदी झेलने को मजबूर होते हैं। अपने देश के बच्चों के संबंध में यूनीसेफ द्वारा जारी आंकड़ों के आधार पर भारत में जन्म लेने वाले 100 बच्चों में से 25 को आवश्यक टीके तक नहीं लगते, 16 को शुद्ध पेयजल उपलब्ध नहीं होता, 47 ऐसे हैं जो पहले तीन वर्षों के दौरान कुपोषण से ग्रस्त रहते हैं, 15 बच्चे कभी स्कूल नहीं जा पाते और केवल 52 बच्चे ऐसे हैं जो पांचवीं कक्षा तक पहुंच पाते हैं।

उल्लेखनीय है कि भारत में बच्चों के संरक्षण, कल्याण और उन्हें उनके मौलिक अधिकार दिलाने के इस वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति में हम सफल नहीं हो पाए हैं। आज भी देश के पांच करोड़ से भी अधिक स्कूल जाने योग्य बच्चे शिक्षा के अपने मौलिक अधिकार से वंचित हैं। अपनी कुल संख्या के एक-तिहाई से अधिक बच्चे कुपोषण और बीमारियों के शिकार हैं। इतने अधिक कानूनों और व्यवस्थाओं के होते हुए भी सरकारी आंकड़ों के अनुसार भी देश के कुल बच्चों की संख्या का 5 प्रतिशत अर्थात करीब एक करोड़ बच्चे अपने परिवार का भरण-पोषण करने के लिए बाल श्रमि के रूप में कार्यरत रहने को मजबूर हैं।

अत: अब यह आवश्यक है कि हम इस संबंध में बनाए गए कानूनों, अधिनियमों और प्रावधानों का विवेचन करें और उनका कड़ाई से अनुपालन सुनिश्चित कर उनकी अवहेलना और दुरुपयोग करने वालों के विरुद्ध कठोरतम कार्यवाही करें। भ्रमित करने वाले आंकड़ों के मायाजाल से दूर रह कर वास्तविकताओं पर अपना ध्यान केंद्रित करने का प्रयास करते हुए सभी बच्चों के लिए वास्तविक रूप में नि:शुल्क और अनिवार्य गुणात्मक शिक्षा की व्यवस्था सुनिश्चित करें। बच्चों को अनिवार्य रूप से शिक्षा उपलब्ध कराने हेतु शिक्षा को बच्चों के मौलिक अधिकारों में शामिल करने संबंधी 93वां संविधान संशोधन यद्यपि संसद द्वारा 2001-2002 में पारित किया जा चुका है लेकिन इसे अमल में लाने के लिए सभी स्तरों से प्रभावी कदम एक साथ उठाने की आवश्यकता है।

समाज से गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा तथा विषमता जैसी बीमारियां दूर किए बिना बच्चों को उनके बुनियादी अधिकार दिलाया जाना संभव नहीं है। इन भयंकर बीमारियों के लिए उत्तरदायी मूल 'वायरस' को भी नियंत्रण में करना परमावश्यक होगा और वह है 'जनसंख्या विस्फोट'। इस संबंध में यद्यपि 'राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 2000' घोषित की जा चुकी है लेकिन वह प्रभावी हो पाएगी इसमें संदेह है क्योंकि इसमें किए गए प्रावधान इतने कमजोर हैं कि उनसे यह लड़ाई लड़ पाना संभव नहीं दिखाई देता। इस हेतु कुछ कठोर प्रावधान जोड़े जाने और उन्हें व्यवहार में परिणत करने की उपयुक्त रणनीति तय किए जाने की आवश्यकता है। यदि शीघ्र ही कदम नहीं उठाए गए तो निश्चित ही हम ऐसे मुकाम पर पहुंच जाएंगे जब सारी बीमारियां लाइलाज हो जाएंगी। अत: बच्चों के सुखद भविष्य और देश के नव-निर्माण की कल्पना को साकार करने के लिए सच्चे मन, निष्ठा और लगन से कुछ उपाय करने होंगे। तभी कामयाबी हासिल की जा सकेगी। ❑

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं।)

काम के बोझ तले दबा बचपन
कारण एवं निवारण

○ प्रशान्त अग्निहोत्री

संविधान में उल्लेखित नीति-निर्देशित तत्वों में बचपन को कुंठाओं और उत्पीड़न से बचाने के संकल्पों के बावजूद हम इस दिशा में प्रशंसनीय प्रयास करने में असफल रहे हैं। आज हमारे देश में बड़ी संख्या में बच्चे अपने भविष्य को भूलकर बाल मजदूर के रूप में खटने को मजबूर हैं। बच्चे किसी भी देश के भावी संसाधन और उसका भविष्य होते हैं। अत: इस गंभीर समस्या के निवारण के लिए हम सबों को आगे आना चाहिए।

बच्चे किसी भी देश के भावी संसाधन और उसका भविष्य होते हैं। यूनीसेफ अपनी रिपोर्टों में बच्चों को महत्वपूर्ण संसाधन के रूप में स्वीकार कर इस बात पर बल देता रहा है कि मानवीय संसाधनों के निवेश या मानव संसाधन निर्माण की प्रत्येक दीर्घकालीन योजना बच्चों से प्रारम्भ की जानी चाहिए।

शायद यह बात कहने में जितनी सरल है, व्यवहारिकता में उतनी ही कठिन। इसलिए संविधान में उल्लेखित नीति-निर्देशित तत्वों में बचपन को कुंठाओं और उत्पीड़न से बचाने के संकल्पों के बावजूद हम इस दिशा में प्रशंसनीय प्रयास करने में असफल रहे हैं। आज हमारे देश में बड़ी संख्या में बच्चे अपने भविष्य को भूलकर बाल मजदूर के रूप में खटने को मजबूर हैं।

बाल श्रम एक विश्वव्यापी समस्या है। यह विश्व की प्राचीनतम सामाजिक समस्याओं में से एक है। वास्तव में यह समस्या हर युग में किसी न किसी रूप में विद्यमान रही है। भारत में प्राचीन काल से ही बालक और बालिकाएं कृषि एवं पारम्परिक व्यवसायों में पूर्ण रूप से सहायता करते थे और विभिन्न प्रकार के कौशल सीखते थे परन्तु विश्व के औद्योगिक विकास के साथ-साथ बाल श्रम के स्वरूप में निरन्तर परिवर्तन होता रहा। भारतीय उप महाद्वीप में 19वीं शताब्दी में औद्योगीकरण के मध्य बाल श्रम के विस्तृत एवं विभिन्न स्वरूपों का विस्तार हुआ। यही नहीं, इस महाद्वीप में बाल श्रम की स्थिति सबसे भयावह है। विश्व के कुल बाल श्रमिकों में से 50 प्रतिशत से अधिक भारत, बांग्लादेश, नेपाल, पाकिस्तान और श्रीलंका में हैं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट के अनुसार अकेले भारत में ही 5 से 10 करोड़ के बीच बाल श्रमिक हैं।

बाल श्रमिक कौन?

बाल श्रमिकों की श्रेणी के अन्तर्गत कौन आता है, इस विषय में मतैक्य नहीं है। संविधान के अनुच्छेद 24 के अनुसार 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को किसी फैक्ट्री, खनन कार्य या किसी जोखिम वाले काम में नहीं लगाया जा सकता। बाल मजदूरी (निषेध और नियमन) अधिनियम, 1986 के अनुसार—वह बालक या बालिका जो 14 वर्ष से कम आयु का हो, बच्चा कहलाएगा जबकि भारतीय जनगणना आयोग के अनुसार काम का तात्पर्य है—किसी आर्थिक उत्पादन क्रिया में प्रतिभागिता।

अत: किसी उद्योग, खान, कारखाने आदि में 14 वर्ष से कम आयु के मानसिक और शारीरिक श्रम करने वाले बच्चे 'बाल श्रमिक' कहलाते हैं परन्तु 5 वर्ष से कम आयु के बच्चे इतने बड़े नहीं होते कि भुगतान या मुनाफे के लिए लाभदायक आर्थिक गतिविधियों में भाग ले सकें। इसलिए बाल श्रमिक 5-14 आयु वर्ग के आर्थिक गतिविधियों में भाग लेने वाले बच्चे होते हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ के बाल अधिकार पर सम्पन्न सम्मेलन में कहा गया है कि बच्चों

के श्रम की वे परिस्थितियां जहां उनका कार्य बच्चे के स्वास्थ्य एवं मानसिक, शारीरिक, आध्यात्मिक या सामाजिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव न डालता हो, बाल श्रम की परिधि में नहीं आता।

भारत में स्थिति

भारत वर्ष के बाल श्रमिकों की संख्या के बारे में विभिन्न संगठनों द्वारा लगाए अनुमान भिन्न-भिन्न तस्वीर पेश करते हैं। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के 32वें दौर के अनुसार भारत में बाल मजदूरों की अनुमानित संख्या 1.74 करोड़ थी। ऑपरेशन रिसर्च ग्रुप ने 1994 में भारत में कामकाजी बच्चों की संख्या 4.40 करोड़ होने का अनुमान लगाया था यद्यपि 1991 की जनगणना के अनुसार यह संख्या 2.63 करोड़ है। सेन्टर फॉर कन्सर्न आफ चाइल्ड लेबर के अनुसार हमारे देश में लगभग 10 करोड़ बाल श्रमिक हैं। यदि विश्लेषणात्मक दृष्टि से देखें तो यह संख्या सही जान पड़ती है क्योंकि देश की कुल जनसंख्या में 5-14 वर्ष की आयु वर्ग के बच्चों की संख्या 25-30 है। 100 करोड़ की आबादी वाले इस देश की लगभग आधी जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे निवास कर रही है। इस दृष्टि से गरीबी की रेखा से नीचे निवास करने वाले 5-14 आयु वर्ग के बच्चों की संख्या लगभग 12-13 करोड़ है। अत: बहुत सम्भव है कि वे स्वयं ही अपना भार उठा रहे हों। इस प्रकार 10 करोड़ का आंकड़ा अतिश्योक्तिपूर्ण नहीं लगता।

हानियां

वस्तुत: बाल श्रम का सबसे अंधकारमय पक्ष बाल श्रम से बच्चों पर पड़ने वाले कुप्रभाव है। बाल मजदूरी के चलते बच्चों का नैसर्गिक, शारीरिक तथा मानसिक विकास बाधित होता है परिणामतया उनकी कार्यक्षमता का ह्रास होता है। यही नहीं, उनकी भावी संस्कृति भी प्रतिकूल रूप से प्रभावित होती है। प्रतिदिन 10 से 12 घंटे थका देने वाला श्रम उन्होंने पढ़ाई से वंचित कर देता है जिससे उनका बौद्धिक विकास नहीं हो पाता। बौद्धिक विकास न हो पाने के कारण सारा जीवन ये मजदूर ही बनकर रह जाते हैं साथ ही अशिक्षित होने के कारण कुपोषण और जनसंख्या वृद्धि जैसी समस्याओं में भी इजाफा ही करते हैं।

जोखिमपूर्ण तथा खतरनाक उद्योगों में काम करने वाले बच्चों के स्वास्थ्य पर तो कुप्रभाव पड़ता ही है, साथ ही दियासलाई, पटाखा, कांच जैस उद्योगों में दुर्घटनाओं की अत्यधिक सम्भावना के कारण इनके अपाहिज होने तथा जान जाने का डर भी सदैव बना रहता है। कांच उद्योग में काम करने वाले को तो 104 डिग्री सेंटीग्रेड तक के तापमान में काम करना पड़ता है।

विभिन्न उद्योगों में काम करने वाले बच्चों को अनेक प्रकार की बीमारियों और विकलांगता का सामना करना पड़ता है। दियासलाई तथा पटाखा उद्योगों में काम करने वाले बच्चों को सांस की दिक्कत तथा भयानक रूप से जल जाने का खतरा होता है जबकि पत्थर खदान, स्लेट या कांच उद्योग में काम करने वाले बच्चे सिलकोसिस, धूल एवं ताप की वजह से दम घुट जाने तथा जल जाने के खतरे से दो-चार होते हैं। हथकरघा उद्योग में फाइब्रोसिस तथा बाइसीनोसिस तथा कालीन उद्योग में धूल एवं रेशों के कारण फेफड़ों की भयानक बीमारी, गठिया तथा जोड़ के तनाव से बच्चों के प्रभावित होने की अत्यधिक संभावना होती है। ताला या पीतल उद्योग में काम करने वाले बच्चों को दमा, भयंकर सिरदर्द, क्षयरोग तथा गुब्बारा फैक्ट्री के बाल-श्रमिकों को निमोनिया, हार्टअटैक जैसी बीमारियां लग जाती हैं।

उत्तरदायी कारण

परिवार की निर्धनता की स्थिति में जब दो जून की रोटी की व्यवस्था काफी कठिन होती है परिवार का 5-6 साल का बच्चा ही कमाऊ पूत बन जाता है। भारत में बाल श्रम के लिए पारिवारिक गरीबी एक महत्त्वपूर्ण उत्तरदायी कारक है। कुछ समंक बताते हैं कि 18 से 58 वर्ष की आयु के (जो अधिकांशत: बच्चों के पालन-पोषण का

दायित्व निर्वहन करते हैं) लगभग 25 प्रतिशत लोग बेकार हैं और शेष जो रोजगार प्राप्त हैं उनमें से 92 प्रतिशत लोग असंगठित क्षेत्र में काम करते हैं, जहां न्यूनतम मजदूरी और सामाजिक सुरक्षा प्रावधानों पर अमल नहीं होता साथ ही पूरे वर्ष रोजगार की भी समस्या रहती है। गरीबी के इस परिवेश में बच्चे मजदूरी करने हेतु विवश हो जाते हैं।

बाल मजदूरी के प्रोत्साहन में नियोक्ताओं का हित भी उत्तरदायी है। वस्तुत: बाल श्रमिक सस्ता और आज्ञाकारी श्रमिक होता है, जिसकी कोई संगठित क्षमता नहीं होती। उससे डरा-धमकाकर अधिक समय तक कम मजदूरी पर काम लिया जा सकता है। इस प्रकार उत्पादन व्यय कम रखने की दृष्टि से नियोक्ता के लिए बाल श्रम लाभ का स्रोत है।

बाल श्रम के लिए माता-पिता की अशिक्षा, विद्यालय का भयप्रद वातावरण, अपव्यय और अवरोधन भी महत्वपूर्ण रूप से उत्तरदायी है। भारत में प्रौढ़ों में आज भी निरक्षरता व्याप्त है। अनेक प्रयासों के बाद 2001 की जनगणना के अनुसार अब देश में साक्षरता दर 65.38 प्रतिशत हो पाई है, जिसमें महिला साक्षरता दर मात्र 54.16 प्रतिशत है। ऐसे में अशिक्षित अभिभावक शिक्षा के महत्व को न समझकर तात्कालिक अर्थलाभ के लिए बच्चों को काम में लगा देते हैं। यही नहीं, जो बच्चे येन-केन-प्रकारेण' विद्यालय में प्रवेश पा भी लेते हैं, विद्यालय का भयप्रद वातावरण उन्हें विद्यालय छोड़ने के लिए बाध्य कर देता है। एक अनुमान के मुताबिक कक्षा 1 में नामांकित होने वाले 100 बच्चों में से 40 ही कक्षा पांच तक पहुंच पाते हैं। कक्षा 8 तक तो यह संख्या मात्र 20 रह जाती है। जाहिर है विद्यालय छोड़ देने वाले ये बच्चे खेलने और पढ़ने की उम्र में बालश्रमिक बन परिवार के लिए कमाऊ पूत बन जाते हैं।

10 से 14 वर्ष की अल्पायु में विवाह भी कुछ हद तक बाल श्रम का एक सशक्त कारण माना जा सकता है। अल्पायु में विवाह की स्थिति में जिम्मेदारी पड़ने पर अनार्थिक जोत, गरीबी और रोजगार की चाह उन्हें बाल श्रम की ओर मोड़ देती है।

बाल श्रम के निवारणार्थ बनाए गए अधिनियमों एवं प्रावधानों का कठोरतापूर्वक पालन न हो पाना भी इस समस्या के निरन्तर विस्तार का एक प्रभावी कारण है। सरकारी तथा गैर-सरकारी तौर पर किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि माचिस तथा पटाखा बनाने वाली फैक्ट्रियों में विस्फोटक सामग्री कानून, फैक्ट्री कानून तथा श्रम कानूनों का उल्लंघन किया जाता है। कुछ सर्वेक्षण यह स्थिति उजागर करते हैं कि प्रबन्धकों के पास काम करने वाले 8 से 10 वर्ष की आयु के सभी बालकों की आयु के संबंध में प्रमाण-पत्र उपलब्ध रहते हैं जिसमें उन्हें 15 वर्ष से अधिक आयु का दिखाया जाता है। यही नहीं, अधिनियमों से बचने के लिए तरह-तरह के तरीके ईजाद कर लिए जाते हैं, जिसमें रिश्वत देने जैसे भ्रष्ट तरीके भी शामिल हैं। बाल श्रमिकों की उपस्थिति अधिनियमों और प्रावधानों के पालन में बरती जाने वाली शिथिलता को स्वयं ही सिद्ध कर देती है।

> ***संवैधानिक व्यवस्थाओं के संदर्भ में भारतीय संसद ने बच्चों के बारे में एक राष्ट्रीय नीति (1974) स्वीकार की, जिसने घोषित किया कि बच्चों की उपेक्षा, क्रूरता और शोषण से रक्षा की जाएगी और 14 वर्ष से कम का कोई भी बच्चा अनिश्चितता वाले व्यवसाय या भारी कार्य में नहीं लगाया जाएगा।***

बाल श्रम के लिए हमारा जाति या वर्ग-आधारित सामाजिक ढांचा, जिसमें प्राय: निम्न जाति या वर्ग में जन्म लेने वाले बच्चों को मजदूरी विरासत में मिलती है, भी जिम्मेदार है। शिक्षा के प्रति उदासीनता, जागरूकता का अभाव, बुरी संगत, पारिवारिक तनाव आदि बाल मजदूरी के अन्य प्रमुख कारण हैं।

संवैधानिक एवं सरकारी प्रयास

बच्चों को बाल श्रम से बचाने के लिए हमारे संविधान में अनेक प्रावधान किए गए हैं। हमारे संविधान का अनुच्छेद 15 राज्यों को महिलाओं और बच्चों की सुरक्षा के लिए विशिष्ट प्रावधान करने की शक्ति देता है। अनुच्छेद 24 में 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को कारखानों एवं अन्य जोखिम पूर्ण कार्य में नियोजन का प्रतिरोध किया गया है तथा अनुच्छेद 39 (ई.एफ) में आर्थिक आवश्यकताओं की वजह से किसी व्यक्ति से उसकी क्षमताओं से परे काम करवाने का प्रतिरोध किया गया है तथा शैशवों तथा बालकों को शोषण से संरक्षित करने का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। अनुच्छेद 45 में बालकों के लिए नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराने का निर्देश राज्य सरकारों को दिया गया है।

इन संवैधानिक व्यवस्थाओं के संदर्भ में भारतीय संसद ने बच्चों के बारे में एक राष्ट्रीय नीति (1974) स्वीकार की, जिसने घोषित किया कि बच्चों की उपेक्षा, क्रूरता और शोषण से रक्षा की जाएगी और 14 वर्ष से कम का कोई भी बच्चा अनिश्चितता वाले व्यवसाय या भारी कार्य में नहीं लगाया जाएगा।

संवैधानिक प्रावधानों के अतिरिक्त अनेक महत्वपूर्ण विधान हैं जो बच्चों को विभिन्न व्यवसायों से कानूनी सुरक्षा देते हैं। फैक्ट्री

एक्ट 1948 किसी भी फैक्ट्री में 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों के रोजगार के बारे में निषेधात्मक व्यवस्थाएं निर्देशित करता है। खान एक्ट 1952, खानों में काम करने के लिए न्यूनतम आयु 15 वर्ष निर्धारित करता है। बागान श्रम एक्ट 1951, 12 वर्ष से कम आयु के बच्चों के चाय, कॉफी और रबर के बागानों में रोजगार निषेधित करता है। ये तीनों एक्ट बच्चों के फैक्ट्रियों और बागानों में सायं 6 बजे के बाद काम को निषेधित करते हैं और उनकी सुरक्षा और उत्थान की व्यवस्था करते हैं।

अनुबंधित श्रमिक (विनियमितीकरण और उन्मूलन) अधिनियम 1975, अनुबंधित श्रमिकों, जिसमें बच्चे भी शामिल हैं, की कार्यदशाएं, मजदूरी का भुगतान, कल्याण सुविधाओं को निर्धारित करता है। बाल श्रमिक (निवारण और नियमितीकरण) अधिनियम 1986 बच्चों के कुछ व्यवसायों में प्रवेश पर रोक लगाता है और कुछ अन्य व्यवसाय प्रकारों की दशाओं का नियमितीकरण करता है। 1987 की राष्ट्रीय बाल श्रम नीति के अन्तर्गत बाल श्रमिकों को शोषण से बचाने और उनकी शिक्षा, चिकित्सा, मनोरंजन तथा सामान्य विकास पर जोर देने की व्यवस्था की गई है। बाल मजदूरी उन्मूलन प्राधिकरण की स्थापना सरकार द्वारा उठाए गए कदमों में एक सार्थक कदम कहा जा सकता है। यह प्राधिकरण बाल मजदूरी, विशेष रूप से जोखिम वाले व्यवसायों मे कार्यरत बाल मजदूरी प्रथा मिटाने हेतु नीतियों एवं कार्यक्रमों का आयोजन करेगा। यह प्राधिकरण जिन कार्यों पर अमल करेगा वे हैं—बच्चों की सुरक्षा हेतु कानून लागू करना, बच्चों को काम से हटाकर ऐसे विशेष स्कूलों में भेजना जहां उन्हें अनौपचारिक शिक्षा एवं व्यवसायिक प्रशिक्षण के साथ-साथ पोषक आहार और छात्रवृत्ति उपलब्ध हो, बाल मजदूरी प्रथा से मुक्त कराए गए बच्चों के अभिभावकों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ बनाने हेतु रोजगार प्रदान करना एवं उनकी आमदनी बढ़ाना, उत्तम शिक्षा एवं पोषक आहार उपलब्ध कराकर नए बच्चों को बाल मजदूरी से रोकना। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में भी सरकार ने बाल श्रमिकों को उत्थान के लिए कई कार्यक्रम शुरू किए हैं। सरकार के अलावा कई गैर-सरकारी स्वैच्छिक संगठन भी इस दिशा में प्रयत्नशील रहे हैं।

सुझाव

विभिन्न संवैधानिक प्रावधानों और सरकारी तथा गैर-सरकारी उपायों के बावजूद हम बाल श्रम का उन्मूलन करने में असफल रहे हैं। वस्तुत: इसके लिए जिस संकल्प शक्ति की आवश्यकता है, उसकी कमी अभी तक हमारे प्रयासों में बनी हुई है। बाल मजदूरी रोकने के लिए हमें अधिक समर्पित और संगठित प्रयास करने होंगे। इसके लिए समयबद्ध लक्ष्य निर्धारित किए जाने चाहिए। बाल श्रम उन्मूलन संबंधी कानूनों की निगरानी करने वाली निगरानी समितियों और कार्यान्वयन तन्त्र को अधिक प्रभावी और अधिकारसंपन्न बनाना चाहिए। इसके साथ स्वयंसेवी संगठनों, पत्रकारों, बुद्धिजीवियों और जनसंचार माध्यमों की भूमिका भी प्रोत्साहित की जानी चाहिए ताकि बाल श्रम से मुक्त कराए गए बच्चों को शिक्षा और प्रशिक्षण की सुविधाएं उपलब्ध कराई जा सकें। गरीब परिवारों को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराए जाने चाहिए ताकि वे बच्चों को काम से हटाकर उनकी शिक्षा की ओर अपेक्षित ध्यान दें। बाल मजदूरों को काम से हटाकर उनके पुनर्वास की ओर भी विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है ताकि वे पुन: श्रम या असमाजिक कार्यों में लिप्त न हों। यही नहीं, समाज में बाल श्रमिकों के प्रति मानवीय दृष्टिकोण पैदा करके हम इस समस्या का सबसे बेहतर ढंग से निवारण कर सकते हैं। ❑

(लेखक हरदोई, उत्तर प्रदेश के प्राथमिक शिक्षा विभाग से सम्बद्ध हैं।)

(पृष्ठ 11 का शेष)

लिए अलग साहित्य की जरूरत को भी इधर शिद्दत से महसूस किया जा रहा है।

एक बड़ी चुनौती आज ढेरों की संख्या में लिखे जा रहे बाल साहित्य में से अच्छे और सार्थक बाल साहित्य की पहचान की है। अगर ऐसा न किया गया तो सबसे बड़ा खतरा यह होगा कि धंधेबाज लेखकों द्वारा थोक में लिखा जा रहा दोयम दर्जे का बाल साहित्य ही बाल साहित्य के रूप में पहचान बना लेगा। यह सचमुच बड़ी त्रासद स्थिति होगी। इस लिहाज से बाल साहित्य की सही आलोचना और इतिहास लेखन की जैसी जरूरत आज महसूस की जा रही है, वैसी शायद पहले कभी नहीं थी।

हिंदी बाल साहित्य की एक और त्रासदी यह है कि अन्य भाषाओं में बड़े से बड़े साहित्यकारों ने भी बच्चों के लिए लिखा है। विदेशी भाषाओं के बारे में तो यह बात सच है ही। भारतीय भाषाओं में भी बांग्ला आदि में बड़े से बड़े लेखकों ने बच्चों के लिए लिखा है और आज भी शीर्षस्थ लेखक बाल साहित्य लिखने में संकोच नहीं करते। बल्कि वे इसे एक लेखक की कसौटी मानते हैं। मानो वे तब तक 'पूर्ण' लेखक नहीं हैं जब तक बच्चों के लिए न लिख लें। हिंदी में समूचे बाल साहित्य को न सिर्फ दोयम दर्जे का, बल्कि शायद 'अछूत' भी मान लिया गया है, यह त्रासद है। यह केवल बाल साहित्य के साथ ही नहीं, बल्कि बच्चे के साथ भी बेइंसाफी है। इस स्थिति को बदला जाना अत्यंत आवश्यक है। ❑

(लेखक 'नंदन' पत्रिका के वरिष्ठ उप संपादक और हिन्दी साहित्य के जाने-माने पत्रकार हैं।)

LAST YEAR RELIANCE INDUSTRIES SET UP OVER TWO MILLION NEW PLANTS.

As a step towards preserving the environment, Reliance Industries has set up an extensive green belt of nearly 850 acres around its Jamnagar complex, sheltering over two million trees of various species.

Reliance
Industries Limited
Growth is Life
www.ril.com

Reliance an ISO 14001 company

Mudra:RIL.9287

औद्योगिक विकास में राज्य वित्तीय निगमों का योगदान

○ मुकेश कुमार शर्मा

भारतीय औद्योगिक वित्त निगम मुख्यतः सार्वजनिक क्षेत्र तथा सहकारी क्षेत्र की बड़ी परियोजनाओं के लिए दीर्घावधि वित्तीय सहायता उपलब्ध कराता था, जबकि लघु उद्योग क्षेत्र का महत्व भी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में कम नहीं। इसके मद्देनजर राज्यों में औद्योगिक वित्त की उपलब्धता हेतु स्थापित उन निगमों के सम्मुख आज अनेकों चुनौतियां हैं जिनसे वे अपनी कार्यप्रणाली एवं परिचालन में यथोचित परिवर्तन लाकर ही निबट सकते हैं।

भारत में स्वतंत्रता के पश्चात 1948 में प्रथम संगठित विकास बैंक के रूप में भारतीय औद्योगिक वित्त निगम की स्थापना की गई। भारतीय औद्योगिक वित्त निगम मुख्यत: सार्वजनिक क्षेत्र तथा सहकारी क्षेत्र की बड़ी परियोजनाओं के लिए दीर्घावधि वित्तीय सहायता उपलब्ध कराता था, जबकि यह निर्विवाद तथ्य है कि लघु उद्योग क्षेत्र का महत्व भी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में बड़े उद्योगों की तुलना में कम नहीं है। वस्तुत: लघु क्षेत्र के उद्योग तथा बड़े पैमाने के उद्योग परस्पर एक-दूसरे के पूरक हैं तथा एक के बिना दूसरे के विकास की कल्पना नहीं की जा सकती। साथ ही लघु तथा मध्यम उद्योग राष्ट्र के समग्र तथा सर्वांगीण विकास की परिकल्पना पर आधारित होने के कारण देश में धन के वितरण की असमानता में कमी लाने का प्रयास भी करते हैं। चूंकि भारतीय औद्योगिक वित्त निगम सार्वजनिक तथा सहकारी क्षेत्र के विशाल एवं आधारभूत उद्योगों को ही दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध कराता था, जबकि अर्थव्यवस्था के विकास तथा रोजगार सृजन की असीमित संभावनाओं के कारण लघु तथा मध्यम उद्योग क्षेत्र की वित्तीय तौर पर उपेक्षा करना भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए आत्मघाती सिद्ध हो सकता था। अत: भारतीय औद्योगिक वित्त निगम की स्थापना तथा परिचालन के बाद सरकार ने राज्यों में औद्योगिक वित्त की उपलब्धता हेतु राज्यों के लिए पृथक राज्य वित्तीय निगमों की स्थापना हेतु प्रयास किए तथा 28 सितंबर, 1951 को संसद 'राज्य वित्तीय निगम अधिनियम 1951' पारित किया। इस अधिनियम के पास होने के बाद देश में 18 राज्य वित्तीय निगमों की स्थापना हुई। इन निगमों में से 17 निगमों की स्थापना राज्य वित्तीय निगम अधिनियम 1951 के अंतर्गत हुई, जबकि 1949 में कंपनी अधिनियम के अंतर्गत 'मद्रास औद्योगिक निवेश निगम लिमिटेड' की स्थापना हुई, जो वर्तमान में 'तमिलनाडु औद्योगिक निवेश निगम लिमिटेड' के नाम से जाना जाता है तथा राज्य वित्तीय निगम के रूप में भी कार्य करता है। राज्य वित्तीय निगम अधिनियम 1957 में राज्य सरकारों को अपने राज्य या क्षेत्र विशेष के लिए वित्तीय निगमों की स्थापना करने का अधिकार दिया गया ताकि राज्य सरकार लघु तथा मध्यम उद्योगों के लिए वित्त आपूर्ति हेतु आवश्यक प्रयास सुगमतापूर्वक कर सकें।

उद्देश्य तथा कार्य

राज्य वित्तीय निगमों की स्थापना की प्रेरणा भारतीय औद्योगिक वित्त निगम के गठन से प्राप्त हुई थी। भारतीय औद्योगिक वित्त निगम अखिल भारतीय स्तर का एक बड़ा वित्तीय संस्थान था, जबकि राज्य वित्तीय निगम भारतीय औद्योगिक वित्त निगम की तुलना में प्रत्येक दृष्टि से छोटे हैं तथा भारतीय औद्योगिक वित्त निगम एवं राज्य वित्तीय निगमों की स्थापना के उद्देश्यों एवं कार्यप्रणाली में भी कई विभिन्नताएं हैं। राज्य वित्तीय निगमों की स्थापना के प्रमुख उद्देश्य निम्नांकित हैं :

1. राज्यों का संतुलित क्षेत्रीय विकास करना।

2. राज्यों में उद्योगों के विकास हेतु औद्योगिक निवेश को प्रेरित करना।
3. लघु उद्योग क्षेत्र में वित्तपोषण द्वारा अधिकतम रोजगार सृजन करना।
4. औद्योगिक स्वामित्व के आधार को अधिक व्यापक बनाने का सतत प्रयास करना।
5. उद्योगों के लिए वित्तपोषण तथा संवर्द्धन क्रियाएं संचालित करना।

सामान्यत: राज्य वित्तीय निगमों का कार्य संबंधित राज्यों में राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की प्राथमिकताओं के अनुरूप लघु तथा मध्यम उद्योगों के विकास हेतु वित्तपोषण करना है। राज्य वित्तीय निगम राज्यों के औद्योगिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हुए क्षेत्रीय विकास बैंकों के रूप में कार्य कर रहे हैं तथा राज्य वित्तीय निगम मियादी ऋण, इक्विटी शेयरों एवं डिबेंचरों में प्रत्यक्ष अभिदान, गारंटियां, विनिमय बिलों की भुनाई, विशेष पूंजी, आदि के रूप में उद्योगों को वित्तीय सहायता प्रदान करते हैं।

देश में बढ़ते उदारीकरण तथा बाजारोन्मुखी अर्थव्यवस्था के चलते राज्य वित्तीय निगमों की कार्यप्रणाली में भी बदलाव आया है तथा राज्य वित्तीय निगमों ने कई प्रकार की वित्तीय क्रियाओं को भी सहायता प्रदान करना प्रारंभ किया है जिनमें पुष्प उत्पादन, टिशू कल्चर, मुर्गी पालन, विपणन जैसी व्यापारिक गतिविधियां भी सम्मिलित हैं जिन्हें पहले वित्तीय सहायता प्रदान नहीं की जाती थी। इसीलिए राज्य वित्तीय निगम अधिनियम 1951 की धारा 2(सी) की परिभाषा को भी संशोधित कर नई इकाईयों तथा व्यापारिक गतिविधियों को वित्तीय तथा तकनीकी सहायता प्रदान करने का अधिकार राज्य वित्तीय निगमों को दिया गया है। साथ ही राज्य वित्तीय निगमों ने उपकरण लीजिंग जैसी सुविधाएं प्रदान करना भी प्रारंभ कर दिया है तथा परामर्श सेवा, मर्चेंट बैंकिंग, डिबेंचर, ट्रस्टीशिप तथा पूंजी संबंधित सेवाओं के क्षेत्र में भी प्रवेश किया है। उदारीकरण के दौर में राज्य वित्तीय निगमों ने निवेश गतिविधियों तथा पूंजी बाजार संबंधित परिचालनों पर विशेष ध्यान दिया है।

वित्तीय स्रोत

वित्तीय वर्ष 2000-2001 में समस्त राज्य वित्तीय निगमों में निधियों का संग्रहण 5211.3 करोड़ रुपये था जिनमें बाह्य स्रोतों से 1902.72 करोड़ तथा आंतरिक स्रोतों से 3308.58 करोड़ रुपये का संग्रहण हुआ। बाह्य स्रोतों से प्राप्त पूंजी में सर्वाधिक भाग भारतीय औद्योगिक विकास बैंक तथा भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक से प्राप्त उधार का था जो 1012.61 करोड़ रुपये था, जबकि अन्य बाह्य स्रोतों से प्राप्त पूंजी में सरकारी बैंकों, बांड्स एवं डिबैंचरों तथा सरकारी सब्सिडी का भाग क्रमश: 33.13, 241.55, 494.86 तथा 40.57 करोड़ रुपये था।

आंतरिक स्रोतों से प्राप्त पूंजी में सर्वाधिक भाग 1661.12 करोड़ रुपये के ऋणों के पुनर्भुगतान से प्राप्त हुआ है जबकि 1210.66 करोड़ रुपये ब्याज तथा लाभांश के रूप में प्राप्त हुए हैं। शेष 436.80 करोड़ रुपये अन्य स्रोतों से प्राप्त हुए हैं।

सहायता का विश्लेषण

राज्य वित्तीय निगमों द्वारा वित्तीय वर्ष मार्च 2001 तक कुल 35888.67 करोड़ रुपये की वित्तीय सहायता को मंजूरी प्रदान की है जबकि इसी अवधि में संवितरण राशि 29284.25 करोड़ रुपये रही। राज्य वित्तीय निगमों की समग्र मंजूरियों की तुलना से समग्र संवितरित राशि का प्रतिशत 81.59 प्रतिशत रहा जो अन्य वित्तीय संस्थानों की तुलना में बेहतर है।

राज्य वित्तीय निगमों द्वारा वित्तीय वर्ष 2000-2001 में मंजूर सहायता 2790 करोड़ रुपये में सर्वाधिक भाग पांच राज्य वित्तीय निगमों का रहा जिनमें कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, केरल, गुजरात तथा तमिलनाडु का कुल भाग समग्र मंजूर सहायता का लगभग 61.1 प्रतिशत रहा जबकि शेष 39.9 प्रतिशत वित्तीय सहायता 13 राज्य वित्तीय निगमों ने मंजूर की।

मार्च 2001 तक कुल मंजूर वित्तीय सहायता में 6 वित्तीय निगमों—कर्नाटक (5495.8 करोड़ रुपये), गुजरात (4370 करोड़ रुपये), तमिलनाडु (4202.3 करोड़ रुपये), महाराष्ट्र (3663.8 करोड़ रुपये), आंध्र प्रदेश (2928.9 करोड़ रुपये) तथा उत्तर प्रदेश (2918 करोड़ रुपये) की वित्तीय सहायता लगभग 65.7 प्रतिशत है जबकि सबसे कम वित्तीय सहायता मंजूर करने वाले राज्य वित्तीय निगमों में हिमाचल प्रदेश (212.15 करोड़ रुपये), असम (116.8 करोड़ रुपये), जम्मू कश्मीर (371.7 करोड़ रुपये) एवं पश्चिम बंगाल (940.5 करोड़ रुपये) सम्मिलित हैं।

इससे स्पष्ट है कि अनेक राज्यों के वित्तीय निगमों द्वारा औद्योगिक विकास हेतु वित्तीय सहायता प्रदान करने में प्रगति नहीं की जा रही है।

उद्योगवार सहायता

मार्च 2001 तक राज्य वित्तीय निगमों ने सर्वाधिक वित्तीय सहायता सेवाक्षेत्र (5694.2 करोड़ रुपये) की प्रदान की है जबकि अर्थ व्यवस्था के अन्य क्षेत्रों—खाद्य उत्पाद (3433.7 करोड़ रुपये), रसायन उद्योग (3221.64 करोड़ रुपये), वस्त्र उद्योग (3089.63 करोड़ रुपये), धातु उद्योग (1099.53 करोड़ रुपये), कागज उत्पाद (1075.34 करोड़ रुपये) आदि को भी काफी मात्रा में वित्तीय सहायता मंजूर की गई है।

उद्देश्यवार सहायता

मार्च 2001 तक राज्य वित्तीय निगमों द्वारा मंजूर की गई समग्र वित्तीय सहायता 35888.67 करोड़ रुपये का सर्वाधिक भाग (23128.9 करोड़ रुपये) नवीन परियोजनाओं हेतु स्वीकृत किया गया। जबकि विस्तारीकरण/विविधीकरण हेतु 6895.45 करोड़ रुपये, आधुनिकीकरण हेतु 1371.17 करोड़ रुपये तथा पुनर्वास कार्यों हेतु सबसे कम 178.24 करोड़ रुपये की वित्तीय सहायता को मंजूरी दी गई है। इसके अतिरिक्त 5314.9 करोड़ रुपये की वित्तीय सहायता की मंजूरी अन्य उद्देश्यों के लिए की गई।

लघु उद्योग क्षेत्र को सहायता

जैसाकि राज्य वित्तीय निगमों की स्थापना

के उद्देश्यों से स्पष्ट है कि राज्यों में लघु तथा मध्यम उद्योगों के वित्तपोषण तथा संवर्द्धन के लिए ही इन निगमों की स्थापना की गई। राज्य वित्तीय निगमों द्वारा मार्च 2001 तक मंजूर की गई समग्र सहायता में से 25589.66 करोड़ रुपये लघु उद्योग क्षेत्र को स्वीकृत की गई जो कुल सहायता का लगभग 7.13 प्रतिशत है। शेष 28.7 प्रतिशत वित्तीय सहायता अन्य क्षेत्रों को मंजूर की गई। चूंकि देश के औद्योगिक उत्पादन तथा रोजगार क्षमता का एक बड़ा भाग लघु उद्योग से ही संबंधित है अत: राज्य वित्तीय निगमों द्वारा लघु उद्योग क्षेत्र को दी जा रही सहायता को सही कहा जा सकता है।

निष्कर्ष

राज्य वित्तीय निगमों ने मार्च 2001 तक कुल 35888.67 करोड़ रुपये की वित्तीय सहायता मंजूर की थी जो समस्त वित्तीय संस्थाओं द्वारा मंजूर की गई वित्तीय सहायता 772903.7 करोड़ रुपये का 4.64 प्रतिशत है, जबकि लघु उद्योग क्षेत्र के विकास बैंक—भारतीय लघु उद्योग विकास बैंकों ने मार्च 2001 तक कुल 66229.1 करोड़ रुपये की वित्तीय सहायता मंजूर की जो समस्त वित्तीय संस्थाओं द्वारा मंजूर कुल सहायता का 8.56 प्रतिशत है। मार्च 2001 तक राज्य वित्तीय निगमों की कुल संवितरित वित्तीय सहायता 29284.25 करोड़ रुपये रही जो समस्त वित्तीय संस्थाओं द्वारा संवितरित सहायता राशि 543452.75 करोड़ रुपये का 5.38 प्रतिशत है।

अखिल भारतीय स्तर पर समस्त वित्तीय संस्थाओं द्वारा मंजूर सहायता 772903.71 करोड़ रुपये का 70.31 प्रतिशत भाग (543452.7 करोड़ रुपये) संवितरित हुआ जबकि राज्य वित्तीय निगमों द्वारा मार्च 2001 तक मंजूर कुल वित्तीय सहायता का 81.59 प्रतिशत भाग (29284.25 करोड़ रुपये) वितरित हुआ। इससे स्पष्ट है कि राज्य वित्तीय निगमों द्वारा संवितरित राशि का प्रतिशत समस्त वित्तीय संस्थाओं में सर्वाधिक है। राज्य वित्तीय निगमों द्वारा मंजूर सहायता प्रथम दृष्टि में बहुत छोटी दिखती है किंतु इसने भी लघु उद्योग क्षेत्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया है। चूंकि अपने राज्यों की औद्योगिक विकास की संभावनाओं तथा आवश्यकताओं के बारे में अन्य अखिल भारतीय वित्तीय संस्थानों की अपेक्षा राज्य वित्तीय निगमों को अधिक जानकारी होती है अत: वे अधिक प्रभावशाली भूमिका अदा करने में सक्षम होते हैं।

यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि राज्य वित्तीय निगमों के संसाधन अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाओं की अपेक्षा काफी सीमित होते हैं तथा इन्हीं सीमित संसाधनों से उन्हें अपना परिचालन करना पड़ता है। इस प्रकार की अनेक बाधाओं के बावजूद राज्य वित्तीय निगमों ने क्षेत्रीय लघु उद्योगों के विकास तथा संवर्द्धन में महत्वपूर्ण योगदान किया है।

वर्तमान समय में जबकि आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया तीव्रतर हो रही है तथा राज्य वित्तीय निगमों जैसी संस्थाओं एवं वाणिज्यिक बैंकों के मध्य का अंतराल धीरे-धीरे कम हो रहा है, राज्य वित्तीय निगमों को भी अपनी कार्यप्रणाली तथा परिचालन में समयानुकूल परिवर्तन करना चाहिए। इस संदर्भ में कुछ सुझाव निम्नलिखित हैं—

- राज्य वित्तीय निगम चूंकि राज्य स्तर के वित्तीय संस्थान होते हैं अत: इनमें राज्य स्तरीय राजनैतिक नेताओं तथा राज्य के प्रशासनिक अधिकारियों का हस्तक्षेप काफी रहता है तथा ये व्यक्ति ऋण प्रक्रिया में काफी हद तक हस्तक्षेप करते हैं। राज्य वित्तीय निगमों में इस प्रकार के अवांछित हस्तक्षेप को तत्काल समाप्त करने की सख्त आवश्यकता है।
- राज्य वित्तीय निगमों द्वारा जारी ऋण प्रक्रिया पहले काफी जटिल थी जिसे अब कुछ सरल किया गया है। फिर भी इसमें काफी सुधारों की आवश्यकता है। ऋण प्रक्रिया के सरलीकरण के साथ-साथ इसमें पूर्ण पारदर्शिता का होना भी अति आवश्यक है ताकि ऋण प्रक्रिया भ्रष्टाचार मुक्त रहे।
- ऋण प्रक्रिया से जुड़े समस्त अधिकारियों तथा कर्मचारियों की सुस्पष्ट जबावदेही भी सुनिश्चित की जाए तथा इन निगमों के कर्मचारियों को आर्थिक वातावरण के अनुरूप अपनी कार्य संस्कृति में भी परिवर्तन लाना चाहिए।
- राज्य वित्तीय निगमों के कर्मचारियों द्वारा बेहतर कार्य निष्पादन हेतु समय-समय पर प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए। ये प्रशिक्षण कार्य अच्छी साख वाली अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाओं के साथ समन्वय कर संचालित किए जाने चाहिए तथा इन कार्यक्रमों में कर्मचारियों को परियोजना मूल्यांकन, पूंजी बाजार, ट्रेजरी प्रबंधन, तनाव प्रबंधन, प्रस्तुति कौशल, व्यावसायिक संवाद आदि विषयों पर प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए ताकि कर्मचारियों की कार्यकुशलता में वृद्धि की जा सके।
- राज्य वित्तीय निगमों द्वारा जारी किए गए ऋणों के एक बड़े भाग की वसूली लंबित पड़ी है। इन ऋणों की समयबद्ध वसूली निगमों की बेहतर आर्थिक स्थिति के लिए बेहद जरूरी है। ऋणों की समय पर वसूली न होने के कारण कई राज्यों के वित्तीय निगमों की आर्थिक स्थिति बेहद चिंताजनक हो गई है। अत: यह आवश्यक है कि निगमों द्वारा जारी ऋणों की समयानुसार वापसी पर विशेष ध्यान दिया जाए।
- राज्य वित्तीय निगमों में सतर्कता विभाग की क्रियाओं में वृद्धि की जानी चाहिए ताकि ऋण प्रक्रिया भ्रष्टाचार मुक्त रहे।
- लघु उद्योग क्षेत्र में बढ़ रही रुग्णता की स्थिति देखते हुए राज्य वित्तीय निगमों की पुनर्वास राशि में वृद्धि की जानी चाहिए ताकि इस प्रकार के उद्योग बंद न हों तथा राज्य वित्तीय निगमों का ऋण समय पर वापस आ सके।
- राज्य वित्तीय निगमों की बढ़ती गैर निष्पादनीय आस्तियों की विशाल राशि इन निगमों के लिए खतरे का संकेत है। इसके लिए राज्य वित्तीय निगमों को ऋण वसूली हेतु विशेष प्रकोष्ठ स्थापित कर अतिरिक्त प्रयास करने चाहिए।

(शेष पृष्ठ 48 पर)

समुद्री पारिस्थितिकीय तंत्र के संरक्षण की आवश्यकता

○ मनोहर पुरी

अगर हम चाहते हैं कि हमारी आने वाली पीढ़ियां मूंगे की शानदार चट्टानों, चांदी से चमकते रेतीले द्वीपों में नारियल के पेड़ों की छाया तथा समुद्री जीवों की प्रचुरता वाले दर्पण से स्वच्छ जल की सुंदरता का आनंद उठाती रहें, पानी में तैर सकें, रेत पर गुनगुनी धूप का आनंद ले सकें और द्वीपों में मूंगे की चट्टानों एवं अन्य स्थानों का भ्रमण कर सकें तो हमें अपनी संपूर्ण शक्ति और संसाधनों से इन स्थानों की पारिस्थितिकी की रक्षा करनी होगी।

अंडमान-निकोबार द्वीपसमूह या किसी अन्य द्वीप को मुक्त बंदरगाह में बदलकर बाजार शक्तियों की मदद से अधिक से अधिक विदेशी मुद्रा कमाने की मांग लगातार उठती रही है लेकिन जितनी जोर से यह मांग उठी है उतनी ही जोर से पर्यावरण संरक्षण के लिए अभियान चलाने वाले इसका विरोध भी कर रहे हैं। वे इस तरह की गतिविधियों का विरोध करते हैं और चाहते हैं कि इन द्वीपों का प्राकृतिक सौन्दर्य बना रहे।

भारत की समुद्री तट रेखा बड़ी लम्बी और सुंदर है और इसके द्वीपों का आकर्षण तो बड़ा ही जबर्दस्त है। लेकिन इनकी न तो खोज की गई है और न इसका लाभ उठाया गया है। इनके तटों पर कभी-कभी पक्षियों की तेज आवाज तट पर घिसटते केकड़ों को चेतावनी देती जान पड़ती है। कांच के तल वाली नौका जब पारदर्शी पानी को चीरती हुई गुजरती है तो समुद्र में फैले मूंगे की चट्टानों के संसार को पूरी भव्यता और सुंदरता के साथ देखा जा सकता है। अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह, लक्ष्यद्वीप, दमण और दीव तथा दादरा और नगर हवेली चाहे भारत के नक्शे में कहीं भी स्थित हों, ये भारतीय समुद्र में नगीने के समान हैं।

भारत की मुख्यभूमि के पूर्व में मरकत की तरह के 572 हरे-भरे द्वीपों और चट्टानों का समूह है अंडमान और निकोबार द्वीप समूह। यह 8,249 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में फैला हुआ है और ऊष्ण कटिबंधीय वर्षावनों से आच्छादित है। यहां के समुद्र तट और खाड़ियां बड़ी सुंदर हैं। यहां अनगिनत किस्मों के दुर्लभ पेड़-पौधे और जीव-जंतु पाए जाते हैं। यहां के समुद्र में भी मूंगे की चट्टानों और अन्य समुद्री जीव-जंतुओं की भरमार है। पर्यावरण के बारे में जागरूक पर्यटकों के लिए अंडमान और निकोबार द्वीप समूह एक स्वप्नलोक की तरह सुंदर स्थान है जहां जाने की वे हमेशा ख्वाहिश रखते हैं। यहां के द्वीपों की घुमावदार तटरेखा से लगे स्वर्णिम रेत वाले तट हैं जिनके आस-पास कछारी वनस्पतियां पाई जाती हैं। यहां शांत समुद्री झीलें हैं और नारियल एवं ताड़ के वृक्ष हैं जो समुद्री लहरों की गति के साथ-साथ तरंगित होते रहते हैं। अंडमान और निकोबार द्वीप समूह बंगाल की खाड़ी में फैले चमकते रत्नों की माला की तरह लगते हैं जो खिली धूप में अपनी पूरी खूबसूरती के साथ दिखाई देते हैं। जब अंडमान निकोबार द्वीप समूह को पर्यटकों के लिए आंशिक रूप से खोलने के बारे में विचार किया जा रहा था तो इसका विरोध हुआ था। पर्यटन निदेशालय ने अपने विज्ञापन में पर्यावरण की दृष्टि से संवेदनशील पर्यटकों की आवश्यकता पर जोर देते हुए यहां के मनोहारी दृश्यों, सूरज की धूप से तपते अछूते समुद्र तटों और यहां की सुहावनी जलवायु का विशेष रूप से उल्लेख किया था। यह भी कहा गया था कि प्रकृति प्रेमियों और शोर-शराबे से दूर एकांत और शांति चाहने वालों के लिए यह स्वर्ग है। अंडमान-निकोबार द्वीप समूह की जलवायु ऊष्ण कटिबंधीय और नम है। यहां की हवा में नमी की मात्रा 70 से 90 प्रतिशत के बीच रहती है और हर वक्त हल्की हवा चलती रहती है। यहां मौसम आम तौर पर सुहावना रहता है

और न्यूनतम तापमान 23 डिग्री सेल्सियस तथा अधिकतम 30 डिग्री सेल्सियस के बीच रहता है। मई से अक्टूबर तक यहां बरसात होती है जिस कारण यह समय पर्यटन की दृष्टि से सही नहीं है। यहां साल में औसतन 3180 मिली मीटर वर्षा होती है।

ये ऊंचे-नीचे द्वीप कई तरह की किंवदन्तियों, कहावतों और रहस्यों से भरपूर हैं। इस बात के कोई पक्के प्रमाण नहीं हैं कि इन द्वीपों का नाम अंडमान-निकोबार कैसे पड़ा। लेकिन कुछ लिखित स्रोतों से यह माना जाता है कि निकोबार के बारे में लोगों को ईसा से पहले 5वीं शताब्दी में और अंडमान के बारे में ईस्वी सन 100 के आस-पास पता था। मार्को पोलो और कुछ अन्य अन्वेषकों के यात्रा वृत्तांतों में इन द्वीपों का यदा-कदा उल्लेख हुआ है। ऐसा माना जाता है कि अंडमान नाम मलयालम के 'हंदुमान' शब्द से और निकोबार 'निकावरम' यानी नग्न लोगों का देश से व्युत्पन्न हुआ है। जो लोग यहां के अर्धनग्न आदिवासियों को देखने की इच्छा से यहां आते हैं उन्हें निराशा ही हाथ लगती है क्योंकि विशेष आदिवासी जनजाति आरक्षित क्षेत्र के प्रावधानों के अनुसार इन लोगों के निवास वाले इलाकों की नाकेबंदी कर दी गई है और आम लोग वहां नहीं जा सकते।

लेकिन अंडमान-निकोबार द्वीपसमूह की खूबसूरती इसके सबसे अलग होने में है जिसकी वजह से यहां के माहौल में अनोखी भव्यता बनी हुई है। पर्यटक यहां फुर्सत का असली मजा उठा सकते हैं क्योंकि यहां उनकी गतिविधियों में खलल डालने वाला कोई नहीं है। यहां के 274 द्वीपों में से केवल 16 आबाद हैं। यहां के 6340 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में से 90 प्रतिशत पर वन हैं। अंडमान-निकोबार द्वीप समूह में पर्यटकों के लिए तमाम सुविधाएं हैं जिस कारण यह फुर्सत के क्षण बिताने के लिए अच्छा स्थान है। थाइलैंड या इंडोनेशिया से आने-जानेवाले अंतर्राष्ट्रीय यात्री जहाज अक्सर यहां ठहरते हैं। अधिकारी इस बात के लिए कृतसंकल्प हैं कि अंडमान हिप्पियों के जमाने की तरह का दूसरा गोवा न बन जाए।

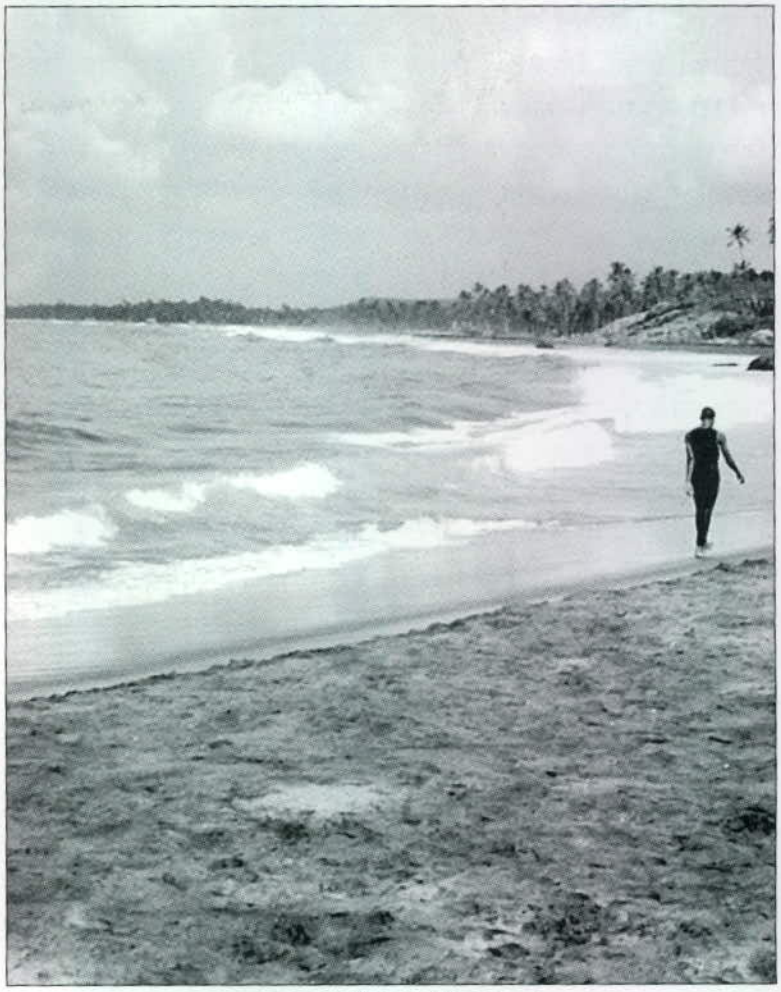

समुद्र तट पर सैर का स्वर्गिक आनन्द

इन द्वीपों के बारे में जो बात अधिक महत्वपूर्ण है वह यह है कि अंडमान-निकोबार द्वीपसमूह भारत की आजादी की लड़ाई के उत्पीड़नों और बलिदान का साक्षी रहा है। हमारी आजादी की लड़ाई के कई योद्धाओं ने कठोर यातनाओं वाले कई साल यहीं गुजारे थे। अनगिनत देशभक्तों का खून-पसीना 1789 से तक यहां यहा था। अंडमान-निकोबार द्वीपसमूह आकर आपकी यात्रा तब तक पूरी नहीं होगी जब तक आप यहां की कुख्यात सेल्यूलर जेल में स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों को श्रद्धांजलि अर्पित नहीं कर लेंगे। आज राष्ट्रीय स्मारक का दर्जा प्राप्त कर चुकी इस जेल में कभी आजादी के दीवानों को बंदी बनाकर रखा जाता था।

कुछ द्वीपों में पानी के खेलों की सुविधाएं भी उपलब्ध हैं। इनमें जोखिम वाले खेल-कूद और सुरक्षित जल क्रीडाएं दोनों शामिल हैं। पोर्ट ब्लेयर में पानी के खेलों के लिए एक परिसर बनाया गया है जो देश में अपनी तरह का पहला है। इसमें सभी तरह के पानी के खेलों के लिए सुविधाएं उपलब्ध हैं। आप चाहें तो पानी में स्कीइंग कर सकते हैं, वाटर सर्फिंग कर सकते हैं, स्पीड बोट दौड़ा सकते हैं, वाटर स्कूटर की सवारी कर सकते हैं और कयाक नौका चला सकते हैं। पानी के अंदर के जीव-जंतुओं का नजारा देखने और मूंगों की दुर्लभ चट्टानों का आनंद लेने के लिए यहां स्कूबा डाइविंग की भी

सुविधा है जिसका फायदा उठाने पर्यटक यहां आते हैं। हजारों पर्यटक यहां मानव विज्ञान संग्रहालय, समुद्री संग्रहालय, चैथम आरा मिल, वनस्पति उद्यान, माउंट हैरियट, चिड़िया टापू, वन्दूर बीच, वाइपर द्वीप और रॉस द्वीप देखने भी आते हैं। पर्यटकों को यह याद रखना चाहिए कि अधिकारियों की पहले से अनुमति लिए बिना यहां से मूंगे, शंख, सीपी आदि ले जाने और वन्य जीवों का शिकार करने पर रोक है।

लक्षद्वीप भारत का एक अन्य समुद्री पर्यटन स्थल है जहां इन दिनों पर्यटकों की संख्या लगातार बढ़ रही है। लक्षद्वीप के लोग इन द्वीपों की पारिस्थितिकी को लेकर बड़े जागरूक हैं। 1996-97 में लक्षद्वीप प्रशासन को केंद्रीय पर्यटन मंत्रालय की ओर से 'पर्यावरण की दृष्टि से अत्यंत संवेदनशील संगठन' का पुरस्कार प्राप्त हुआ। यह पुरस्कार उसे प्रशासन की उन नीतियों और परियोजनाओं की उत्कृष्टता के लिए दिया गया जिनसे द्वीपों के पर्यावरण के संरक्षण और पर्यटन को बढ़ावा देने के साथ-साथ लोगों में पर्यावरण के बारे में जागरूकता पैदा करने के लिए दिया गया।

लक्षद्वीप यानी 'एक लाख द्वीप' प्राचीन काल में ज्वालामुखी विस्फोट से बने द्वीप हैं। यह भारत का सबसे छोटा केंद्रशासित प्रदेश है। यहां मूंगे की 12 वलयाकार चट्टानें, तीन प्रवाल भित्तियां और 5 जलमग्न तट हैं। लोगों का मानना है कि लक्षद्वीप नाम 'लक्ष्य' अर्थात निशाने से पड़ा है क्योंकि प्राचीन काल में अफ्रीका, अरब और मालाबार को आने-जाने वाले नाविक इन द्वीपों से दिशा का पता लगाते थे। लक्षद्वीप 36 छोटे द्वीपों का समूह है जो भारत के पश्चिमी तट से 200 से 400 किलोमीटर की दूरी पर अरब सागर में 8^0 और 12^0 अक्षांश उत्तर में तथा 71^0 और 74^0 देशांतर पूर्व में फैले हुए हैं। इनमें से केवल 10 आबाद हैं जबकि बाकी निर्जन हैं। पहले इन्हें लक्कदीव, मिनिकॉय और अमीनीदिव के नाम से जाना जाता था। 1956 में इन्हें केंद्रशासित प्रदेश बनाया गया। 1973 में इन्हें लक्षद्वीप नाम दिया गया। प्रसिद्ध यूरोपीय अन्वेषक मार्को पोलों ने अपने यात्रा विवरणों में मिनिकॉय का जिक्र 'स्त्रियों केद्वीप' के रूप में किया है। इसका कारण शायद यह रहा होगा कि यहां स्त्रियों की संख्या अधिक होगी और जीवन के हर क्षेत्र में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही होगी।

लक्षद्वीप की जलवायु केरल के ही समान है। यहां साल में औसतन 1600 मिलीमीटर वर्षा होती है। जून से सितंबर तक बरसात का मौसम होता है। यहां का औसत तापमान 24.31^0 से 31.2^0 सेल्सियस के बीच रहता है। पूरे साल हवा में नमी बनी रहती है और सापेक्ष आद्रता 70 से 75 प्रतिशत के बीच रहती है। करीब 60 हजार की आबादी वाले इन द्वीपों के बारे में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। यहां के अधिकतर निवासी मुसलमान हैं और मलयालम बोलते हैं। मालदीव से लगने वाले इलाकों में महल भी बोली जाती है। इसका क्षेत्रफल 28.4 वर्ग किलोमीटर है जिसमें से 23 किलोमीटर निर्जन है। ये द्वीप समुद्र तल से केवल तीन या चार मीटर ऊपर हैं। सभी द्वीप उत्तर की ओर चौड़े हैं जबकि दक्षिण में संकरे होते चले जाते हैं। ये सब अद्भुत प्राकृतिक सुंदरता से भरपूर हैं। अरब सागर में ये हरे मरकत की माला से लगते हैं। यहां के द्वीपों में नारियल के उद्यान हैं और नीले समुद्र में यहां की वलयाकार समुद्री झीलें प्रकृति का अद्भुत दृश्य प्रस्तुत करती हैं। स्वच्छ पानी वाली इन झीलों के बीच में भी बड़े खूबसूरत टापू हैं। मूंगे की चट्टानें इन वलयाकार झीलों को समुद्र से अलग करती हैं।

लक्षद्वीप भारत का मूंगे की चट्टानों वाला एकमात्र द्वीप है जिसकी प्रवाल भित्तियों के बीच समुद्री झील समाई हुई है। द्वीपों के पश्चिम की ओर प्रवाल भित्तियां हैं जिनमें बीच-बीच में उथली समुद्री झीलें हैं। इन द्वीपों को राजस्थान की अरावली पर्वतमाला का भौगोलिक हिस्सा बताया जाता है जिस पर लाखों सालों से मूंगे की चट्टानें जमती गई हैं। द्वीपों के आस-पास का समुद्र तल भी चट्टानों वाला है। समुद्री झीलों के तल पर रेत और अवसाद भरता गया है। इन झीलों में अनगिनत रंग-रूप वाले सुंदर-सुंदर मूंगे जीवित और मृत अवस्था में हैं जो समुद्र के नीले पानी की पृष्ठभूमि में और भी खूबसूरत और स्पष्ट नजर आते हैं।

एक ओर प्रकृति लक्षद्वीप को अपने उपहार देने में इतनी उदार रही है तो दूसरी ओर यहां कई जोखिम भी हैं जिनकी वजह से यहां के लोगों का जीवन बड़ा कठोर हो जाता है। बरसात के मौसम में मूंगे की चट्टानों से होकर रिसने वाले बरसाती पानी के अलावा यहां पीने के पानी का कोई अन्य स्रोत नहीं है। समुद्री पानी से हल्का होने के कारण यह जमीन के नीचे समुद्री सतह से ऊपर एक परत के रूप में जमा हो जाता है। कुओं के जरिए इसे निकाल लिया जाता है और पीने के लिए इसका उपयोग किया जाता है। मगर इसमें खारापन काफी अधिक होता है। इसके अलावा एक और समस्या यह है कि इन द्वीपों में नारियल के अलावा और कुछ भी उगता नहीं है। खाने-पीने और दैनिक उपयोग की हर छोटी-बड़ी चीज यहां मुख्य भूमि से लानी पड़ती है जो कोई आसान कार्य नहीं है।

दमण और दीव भी इन दिनों बड़ी संख्या में पर्यटकों को अपनी ओर आकृष्ट कर रहे हैं जिससे यहां के पर्यावरण में खराबी का सिलसिला जारी है। दमण मुंबई से 193 किलोमीटर उत्तर में गुजरात तट के पास स्थित है जबकि दीव काठियावाड़ प्रायद्वीप के दक्षिणी छोर पर स्थित है। 30 मई 1987 को जब गोवा को पूर्ण राज्य का दर्जा दिया गया तो दमण और दीव अलग केंद्रशासित प्रदेश के रूप में सामने आए। 1961 में पुर्तगालियों के कब्जे से मुक्त होने के बाद भारत के पश्चिमी तट के इन तीन अलग-अलग भौगोलिक क्षेत्रों को एक राजनीतिक इकाई के रूप में संगठित किया गया था।

दमण के उत्तर में कोलक नदी है, पूर्व में गुजरात, दक्षिण में कोलई नदी और पश्चिम में खम्बात की खाड़ी है। यहां के समुद्र तट, गिरजाघर और किले बड़े शानदार हैं। यहां की इमारतों के स्थापत्य पर यूरोपीय शैली की छाप स्पष्ट दिखाई देती है जिससे औपनिवेशिक शासन वाले जमाने की पुरानी यादें ताजा हो जाती हैं। दमण का 'देवका बीच' पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र है। इसके अलावा काचीगाम में सिंचाई झील, जम्पोर बीच, नानी दमण, जेटी गार्डन, हिल्सा मछली एक्वेरियम जैसे स्थानों को देखने के लिए भी हर साल बड़ी संख्या में पर्यटक आते हैं। 'मोटी दमण बीच' घनी आबादी वाले इलाके में स्थित होने से ज्यादा साफ-सुथरा नहीं है जबकि 'नानी दमण' भीड़-भाड़ से दूर बड़ा शांत और सुकून देने वाला स्थान है।

भारत की समुद्री तट रेखा लंबी और सुंदर है

दीव भारत में नक्शे में छोटा-सा बिन्दु मात्र नहीं है बल्कि यह एक मनमोहक स्थान है। यह सौराष्ट्र तट के पास वेरावल से करीब 111 किलोमीटर दूर है। दो पुलों के जरिए यह मुख्य भूमि से जुड़ा है। यह छोटा-सा समुद्री टापू करीब 40 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला हुआ है और यहां की आबादी 50 हजार से भी कम है। इसके उत्तर में गुजरात के जूनागढ़ और अमरेली जिले हैं और बाकी तीन ओर से यह अरब सागर से घिरा है। यह एक ऐसा टापू है जो अभी आधुनिक सभ्यता के असर से बिगड़ा नहीं है। यह समुद्री बयार और सुंदरता का द्वीप है। सूरज, रेत और समुद्र का ऐसा अनोखा मेल यहां पाया जाता है कि आप प्रकृति के साथ मौन होकर बातचीत कर सकते हैं। यहां के सुनहरी बालू वाले समुद्र तटों और ऐतिहासिक स्मारकों में देखने के लिए घंटों तक रुका जा सकता है लेकिन अब तक यह भारत के कम प्रसिद्ध पर्यटन स्थलों में से एक है। वैसे दीव के बारे में पुराणों के जमाने से जानकारी रही है। ऐसा माना जाता है कि पांडवों ने अपने अज्ञातवास के कुछ दिन यहां भी गुजारे थे। फुदान के गंगेश्वर मंदिर में पांच शिवलिंग हैं जो पांचों पांडवों के बताए जाते हैं। हर रोज समुद्री लहरें दो बार इन शिवलिंगों को प्रक्षालन करती हैं। विदेशी व्यापारियों के लिए दीव भारत से संपर्क का एक महत्वपूर्ण स्थान हैं।

रात के समय जब दीव की रोशनियां जल जाती हैं तो ऐसा लगता है मानो किसी परी-लोक में पहुंच गए हों। दीव का किला तीन ओर से समुद्र से घिरा हुआ है और दूर से ही साफ नजर आता है। यहां से समुद्र का भव्य दृश्य देखा जा सकता है। दीव की समुद्री तटरेखा 21 किलोमीटर लंबी है और यहां के समुद्र तट दुनिया के बेहतरीन समुद्र तटों में से हैं। 'नागोऊ बीच' शहर से करीब 9 किलोमीटर की दूरी पर है। खूबसूरत स्थान होने के कारण यह स्थान घूमने-फिरने वालों और पर्यटकों के लिए आकर्षण का केंद्र है। घोड़े की नाल के आकार का यहां का समुद्र तट तैरने के लिए पूरी तरह सुरक्षित है। यहां पानी के खेल-कूद की भी सुविधाएं हैं। 'घोघला', 'चक्रतीर्थ' और 'जलंधर बीच' भी देखने योग्य हैं। दीव-गुजरात सीमा पर स्थित अहमदपुर मंदिर में समुद्र बीच रिसॉर्ट छुट्टियां मनाने वालों के लिए आदर्श स्थान है। यहां तैरने, सर्फिंग करने, घूमने-फिरने और जल-क्रीडा की सुविधाएं उपलब्ध हैं। दीव में आप अपनी छुट्टियां अलग ही तरह से मना सकते हैं। यहां के लोग बड़े दोस्ताना हैं, यहां का माहौल परी लोक जैसा है और जीवन की रफ्तार बड़ी धीमी है। इसके साथ ही पुराने जमाने में पुर्तगाली शासन की स्मृतियां यहां के माहौल में बसी हुई हैं। सन सेट प्वाइंट पर सूर्यास्त का नजारा तो बड़ा ही खूबसूरत लगता है और बहुत से लोग इसे देखने यहां आते हैं। सोने जैसी आभा वाला सूर्य का गोला जब तक स्याह आकाश की गोद में छुप नहीं जाता तब तक यहां खड़ा विशाल जनसमूह दम साधे इंतजार करता रहता है। दीव के समुद्र तटों की तुलना में दमण के तट गंदे, उबाऊ और अनाकर्षक हैं। यहां के प्रशासन को इस ओर और अधिक ध्यान देना चाहिए और प्राकृतिक सौंदर्य को बनाए रखने के प्रयास करने चाहिए।

दुर्भाग्य से बहुत से लोग दमण और दीव की यात्रा प्राकृतिक सौंदर्य की झलक देखने के लिए नहीं करते, बल्कि वे यहां इसलिए आते हैं क्योंकि यहां शराब बंदी लागू नहीं है। दमण और दीव के बाजारों में शराब पिलाने वाले बार की भरमार है। पड़ोसी राज्य गुजरात पूर्ण मद्यनिषेध वाला देश का एकमात्र राज्य होने के कारण वहां से शराब के शौकीन लोग बड़ी संख्या में यहां आते हैं।

गुजरात और महाराष्ट्र के बीच पश्चिमी तट पर स्थित छोटा-सा केंद्रशासित प्रदेश है दादरा और नगर हवेली। 1954 तक यहां पुर्तगालियों का शासन था। 1961 में दादरा और नगर हवेली का भारतीय संघ में विलय हुआ। यह प्रदेश 491 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में फैला हुआ है। इसकी राजधानी सिलवासा मुंबई से करीब 180 किलोमीटर की दूरी पर है। यहां पहुंचने के लिए सबसे नजदीक का रेलवे स्टेशन गुजरात में वापी में है। सिलवासा, वापी से सिर्फ 18 किलोमीटर और वलसाड से 28 किलोमीटर की दूरी पर है। दादरा और नगर हवेली की जलवायु न अधिक ठंडी है और न अधिक गर्म। यहां नारियल के दरख्तों के बीच से होकर गुजरते हुए बड़ी ताजगी महसूस होती है। यहां की प्रदूषण मुक्त हवा से मन तरोताजा महसूस करता है।

दादरा में वनगोगा गार्डन और सिलवासा में वन्ढारा गार्डन बड़े मनोहर पर्यटक स्थल हैं जहां नौकायन की सुविधा भी उपलब्ध है। शांति की तलाश करने वालों के लिए यहां के शीतल जलाशय पार्क में बहुत कुछ है। परिवार के साथ सैर-सपाटा करने वालों का यह चहेता पिकनिक स्थल है। यहां दमणगंगा के विशाल पाट की पृष्ठभूमि में नदी की धारा की कल-कल ध्वनि का आनंद उठाया जा सकता है। सिलवासा में यहां के जनजातीय लोगों की जीवनशैली को प्रदर्शित करने वाला म्यूजियम पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र है। यह जिस इमारत में है वह जनजातीय लोगों के रहने की झोंपड़ी-सी लगती है। म्यूजियम में जनजातीय लोगों के आदमकद मॉडल भी बने हुए हैं जिन्हें रोजमर्रा के काम-काज करते दिखाया गया है। ट्रैकिंग करने वाले यहां की पहाड़ियों और जंगलों में घूम-फिर सकते हैं। यहां प्रदूषण से मुक्त और हरे-भरे जंगल दूर-दूर तक फैले हुए हैं और आस-पास का माहौल भी प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर है। यहां के बीहड़ और ऊबड़-खाबड़ इलाके ट्रैकिंग करने वालों का स्वर्ग साबित हो सकते हैं।

लेकिन यह देखकर दुख होता है कि इन द्वीपों के पर्यावरण की ठीक से देखभाल नहीं की जा रही है। यहां के जंगलों को जलावन लकड़ी के लिए काटा जा रहा है। पैसों के लिए यहां के समुद्री जीव को नुकसान पहुंचाया जा रहा है। इन सब कारणों से यहां की खूबसूरत वलयाकार झीलें बड़ी तेजी से खराब होती जा रही हैं। कैसी विडंबना है कि जो मनुष्य पर्यावरण का भरपूर आनंद उठा रहा है वही बड़े पैमाने पर इनके विनाश का कारण भी बनता जा रहा है। मूंगों और मूंगे की चट्टानों को निर्माण कार्यों के लिए अंधाधुंध निकाला जा रहा है। इससे समुद्री झीलों में रहने वाले जीव-जंतुओं और वनस्पतियों का नुकसान तो हो ही रहा है, मिट्टी के कटाव में भी जबर्दस्त तेजी आ गई है। लगभग सभी समुद्री झीलों में काफी बड़े इलाके में मूंगे की चट्टानें नष्ट होती जा रही हैं। कटाव से आई रेत से इन मूंगों को सांस लेने को पर्याप्त हवा नहीं मिल पाती। इसका इन पर दीर्घकालीन दुष्प्रभाव पड़ता है। इसके साथ ही इनके खाद्य पदार्थों की कमी पैदा हो जाने से कई जीव-जंतु तो धीरे-धीरे खत्म होते जा रहे हैं और उन्हें फिर से जीवित करना असंभव होता जा रहा है। अगर यह आत्मघाती प्रवृत्ति बनी रही तो बहुत से उपयोगी जीव-जंतु हमेशा के लिए नष्ट हो जाएंगे और अंततः यह द्वीप भी मनुष्यों के रहने योग्य नहीं रह जाएगा।

दुर्भाग्य से आम आदमी को यहां की समुद्री झीलों में पाए जाने वाले जीव-जंतुओं और वनस्पतियों की जानकारी ही नहीं है। ये जीव-जंतु और वनस्पतियां यहां के पारिस्थितिकीय तंत्र की हिफाजत के लिए बहुत उपयोगी हैं। इस बारे में लोगों को जानकारी देने की आवश्यकता है। इसे ध्यान में रखते हुए कावरत्ती में एक म्यूजियम और एक समुद्री जीवों का एक्वेरियम बनाया गया। इसमें विभिन्न प्रकार के जीव-जंतुओं को जीवित अवस्था में रखा गया है ताकि लोग इनके प्राकृतिक गुणों के बारे में जान सकें। राष्ट्रीय समुद्री उद्यान की स्थापना के लिए भी योजना बनाई जा रही है और कुछ निर्जन द्वीपों को समुद्री जीवों के लिए अभ्यारण्य घोषित करने का भी प्रस्ताव है।

संक्षेप में अगर हम चाहते हैं कि हमारी आने वाली पीढ़ियां मूंगे की चट्टानों, चांदी-सी चमकती रेत और नारियल के पेड़ों से आच्छादित द्वीपों की खूबसूरती और भांति-भांति के जीव-जंतुओं से भरपूर समुद्री झीलों के निर्मल जल का आनंद ले सके और उसमें तैर सके तो हमें अपने समस्त संसाधनों तथा शक्ति से इनकी हिफाजत करनी चाहिए। इसके लिए भविष्य में पर्यटक सुविधाओं से संबंधित तमाम विकास कार्य करते समय समुद्री जीवों तथा तटवर्ती संसाधनों के संरक्षण पर लगा देने चाहिए। इस नाजुक पारिस्थितिकीय तंत्र की हर कीमत पर रक्षा की जानी चाहिए क्योंकि इसकी हरेक चीज देखने लायक और आनंद लेने लायक है। जाहिर है कि इसके लिए हमें पारिस्थितिकीय संसाधनों से छेड़-छाड़ कम से कम करनी होगी और देखकर ही उनका भरपूर आनंद उठाना होगा। पहाड़ों के लिए जो स्वर्णिम आदर्श वाक्य है, वही द्वीपों पर भी लागू होना चाहिए। यानी; पहाड़ों से फोटोग्राफ को छोड़कर कोई भी चीज अपने साथ मत ले जाइए और वहां अपने पदचिह्नों के सिवाय और कुछ भी छोड़कर मत आइए।

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं।)

जापान की आर्थिक प्रगति में प्रबंध की 'जेन' शैली का योगदान

○ विनोद कुमार तिवारी

इस प्रबंध शैली में निष्पादन मूल्यांकन का विशिष्ट स्वरूप है। जो कर्मचारियों के अर्द्धवार्षिक बोनस की राशि तथा पदोन्नति का आधार होता है। इसमें कर्मचारी के कार्य सीखने की योग्यता, दूसरे कर्मचारियों के साथ सहयोग करने एवं लेने की योग्यता, तथा कनिष्ठ कार्मिकों को प्रशिक्षित करने की योग्यता को भी दृष्टिगत रखा जाता है।

बीसवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध जहां बढ़ते उपनिवेशवाद एवं उसके फलस्वरूप हुए दो विश्व युद्धों के लिए जाना जाता है, वहीं इस शताब्दी का उत्तरार्द्ध 'नव अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था' के विकास के लिए याद किया जाएगा। यह नव अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था जो सभी राष्ट्रों की समानता के सिद्धांत पर आधारित है तथा संपूर्ण मानवता के कल्याण एवं शांति के उद्देश्य से प्रेरित है, 1964 में हुए प्रथम 'संयुक्त राष्ट्रसंघ व्यापार एवं विकास सम्मेलन' से लेकर 'विश्व व्यापार संगठन' की स्थापना तक दीर्घ यात्रा तय कर चुकी है। इससे व्यापार की राष्ट्रीय सीमाएं शिथिल हुई हैं; व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धा में तीव्र गति से वृद्धि हुई है। इस अवधि में विकासशील देशों ने विकास की उच्च दर प्राप्त करने का प्रयास किया है। युद्धोत्तर काल में अन्य देशों के साथ ही एशिया के छोटे से भू-खंड वाले देश जापान ने भी अपनी विकास-यात्रा प्रारंभ की जिसे उगते सूरज का देश 'निहोन कोकू' कहा जाता है।

द्वितीय विश्व युद्ध में पराजित जापान को अत्यधिक विनाश का सामना करना पड़ा था। दो प्रमुख नगरों—हिरोशिमा एवं नागासाकी पर क्रमशः 6 एवं 9 अगस्त 1945 को अमेरिका द्वारा परमाणु बम गिराए जाने के बाद जापान ने आत्मसमर्पण करके पराजय स्वीकार कर ली। यही नहीं, द्वितीय विश्व युद्ध में जापान ने 46 प्रतिशत भूमि, 80 प्रतिशत जलायन और 20 प्रतिशत औद्योगिक संयंत्र खो दिए। आत्मसमर्पण के पश्चात अमेरिकी नियंत्रण में आए, आर्थिक रूप से क्षतिग्रस्त तथा मनोवैज्ञानिक रूप से टूटे जापान ने अपनी विकास यात्रा प्रारंभ की।

आर्थिक प्रगति

वर्ष 1947 में अमेरिकन आधिपत्य में 'मेज़ी संविधान' के स्थान पर 'शोवा संविधान' लागू हुआ तथा जापान ने अमेरिकी छत्रछाया में पुनर्निर्माण कार्य आरंभ किया। वर्ष 1952 में अमेरिकी आधिपत्य समाप्त हो गया तथा जापान ने स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में प्रगति-पथ पर कदम बढ़ाए। जापान के लिए 1960 के पश्चात के तीन दशक स्वर्णिम कहे जा सकते हैं। जापान में 1960 से 1990 की अवधि में उत्पादन क्षेत्र में रोजगार 8169 हजार से बढ़कर 11788 हजार हो गया जबकि सकल घरेलू उत्पादन 66769 मिलियन येन से बढ़कर 4,07,156 मिलियन येन हो गया। इसके अतिरिक्त विद्युत उत्पादन, घरेलू परिवहन, स्टील, चौपहिया वाहन, टेलीविजन सेट के उत्पादन एवं निर्यात में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई। (जापान की औद्योगिक प्रगति सारणी-1 में दर्शाया गया है।) जापान की औद्योगिक क्षेत्र में प्रगति विपरीत परिस्थितियों तथा कच्चे माल की कमी के बावजूद हुई है। जापान को अपनी आवश्यकता का अधिकांश लौह-खनिज तथा कच्चा तेल आयात करना पड़ता है।

विदेश व्यापार के क्षेत्र में भी जापान ने उल्लेखनीय प्रगति की है। निर्यात, जो 1984 में 168.2 बिलियन अमेरिकी डॉलर था, 1998 में बढ़कर 387.9 बिलियन अमेरिकी

सारणी-1

जापान की औद्योगिक प्रगति

क्रमांक	मद	1960	1990
1.	उत्पादन क्षेत्र में रोजगार (हजार में)	8169	11788
2.	सकल राष्ट्रीय उत्पाद (मिलियन येन)	66769	407156
3.	विद्युत उत्पादन (मिलियन किलोवाट घंटा)	115497	857272
4.	अंतर्देशीय माल यातायात (मिली. टन कि.मी.)	138901	546785
5.	इस्पात उत्पादन (मिलि. मी. टन)	22138	110339
6.	इस्पात निर्यात (हजार मी. टन)	2313	16735
7.	चौपहिया वाहन उत्पादन (हजार)	482	13487
8.	चौपहिया वाहन निर्यात (हजार)	39	6165
9.	टेलीविजन सेट उत्पादन (हजार)	3577	15132
10.	टेलीविजन सेट निर्यात (हजार)	45	7598
11.	कम्प्यूटर उत्पादन (हजार)	0	3292

डॉलर हो गया। यद्यपि आयात भी बढ़ा। यह 1984 के 124.0 बिलियन अमेरिकी डॉलर की तुलना में 1998 में बढ़कर 280.5 बिलियन अमेरिकी डॉलर हो गया तथापि निर्यात में हुई वृद्धि आयात में हुई वृद्धि की अपेक्षा अधिक थी। परिणामत: व्यापार शेष में तीव्र गति से वृद्धि हुई। व्यापार शेष 1984 के 44.2 बिलियन अमेरिकी डॉलर की तुलना में 1998 में बढ़कर 107.4 बिलियन अमेरिकन डॉलर हो गया।

जापान की यह प्रगति निरपेक्ष है किंतु सापेक्ष दृष्टि से अध्ययन करने पर भी वह अपने अन्य प्रतिस्पर्द्धियों से आगे प्रतीत होता है। जापान से 1994 में अमेरिका, जर्मनी और ब्रिटेन को निर्यात क्रमश: 12000, 1800 तथा 1300 बिलियन येन था जबकि इन्हीं देशों से आयात क्रमश: 6400, 1100 तथा 600 बिलियन येन था। यद्यपि चीन एवं आस्ट्रेलिया जैसे कुछ ऐसे देश भी हैं, जिनसे जापान का व्यापार शेष प्रतिकूल है तथापि उनकी संख्या कम है। जापान का प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पाद भी अपने प्रतिस्पर्द्धियों से कहीं अधिक है। जापान की इस आर्थिक प्रगति का सकारात्मक प्रभाव वहां मानव-कल्याण पर भी पड़ा जो जन्मदर, मृत्युदर तथा नवजात शिशु मृत्युदर के आंकड़ों से परिलक्षित होता है। जापान में जन्मदर 1950 में 28.1 प्रति हजार थी जो 1996 में घटकर 9.7 प्रति हजार रह गई। इसी प्रकार मृत्युदर, जो 1950 में 10.9 प्रति हजार थी, 1996 में घटकर 7.2 प्रति हजार रह गई। शिशु मृत्युदर भी 1950 की 60.1 प्रति हजार से घटकर 1996 में 3.8 प्रति हजार रह गई। मानव कल्याण कार्यक्रमों का सकारात्मक प्रभाव यह भी हुआ है कि अमेरिका, जर्मनी तथा ब्रिटेन की तुलना में जापान में मानव जीवन प्रत्याशा (औसतन 80 वर्ष) अधिक है। यहां जीवन प्रत्याशा महिलाओं के लिए 83.2 वर्ष और पुरुषों के लिए 77.2 वर्ष है।

जापान की द्वितीय विश्वयुद्धोत्तर काल की यह तीव्र आर्थिक प्रगति, जिसे अनेक विद्वानों ने 'आर्थिक चमत्कार' कहा है, विभिन्न घटकों का सम्मिलित प्रभाव है। इनमें से कुछ घटकों की चर्चा करना समीचीन है—

1. द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विभिन्न औद्योगिक देशों में विकास की प्रतिस्पर्द्धा प्रारंभ हो गई थी। युद्ध के दौरान हुई आर्थिक क्षति को पूरा करने तथा दूसरे देशों से आगे निकलने की महत्वाकांक्षा ने सभी देशों में विकास की गति को बढ़ाया।
2. युद्धोपरांत अमेरिकी आधिपत्य तथा शांति संविधान के कारण जापान को सशस्त्र सेनाएं रखने का अधिकार नहीं दिया गया। युद्ध से पूर्व जापान के सरकारी व्यय का लगभग 50 प्रतिशत भाग रक्षा मद पर व्यय होता था जो युद्ध के पश्चात घटकर 5.9 प्रतिशत रह गया। इस बची राशि को विकास पर व्यय किया गया।
3. जापान में जनसंख्या पर प्रभावी नियंत्रण किया गया। युद्ध ने तो भावी जन्मदाताओं को मृत्यु के मुंह में झोंका ही, 1948 का 'यूजेनिक्स प्रोटेक्शन लॉ' जिसने गर्भपात को वैधानिक मान्यता दी, जनसंख्या नियंत्रण का महत्वपूर्ण अस्त्र सिद्ध हुआ। जनसंख्या वृद्धि दर 1955 से 1960 के मध्य 0.8 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही। वर्तमान में जापान में जन्मदर 9.5 प्रति हजार है। इससे प्रति व्यक्ति आय में प्रभावी वृद्धि संभव हुई है।
4. विभिन्न भू-सुधारों से कृषि भूमि जमींदारों के हाथ से निकलकर कृषकों के हाथ में पहुंच गई जिससे कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई और कृषि पर आश्रित व्यक्तियों की समृद्धता बढ़ी।
5. श्रम-संघों को वैधानिक स्वरूप दिया गया। इससे श्रमिकों की आय में वृद्धि हुई।
6. प्रजातांत्रिक विचारधारा के पल्लवित होने से सामान्य जन-जीवन का आधुनिकीकरण हुआ जिसने जापानी नागरिकों की उपभोग प्रवृत्ति को प्रभावित किया। फलत: उत्पादन क्षेत्र में तकनीकी अन्वेषण की आवश्यकता अनुभव की गई। विदेशों से तकनीकी आदान-प्रदान से भी तकनीकी विकास संभव हुआ।
7. पुराने एवं अप्रचलित संयंत्र एवं मशीनरी युद्ध काल में बड़े पैमाने पर नष्ट हो गए। उन्हें प्रतिस्थापित करने के लिए विदेशी कम्पनियों के सहयोग से नए अत्याधुनिक तकनीक वाले संयंत्र स्थापित किए गए। जापानी अभियंताओं ने भी स्वदेशी तकनीक के विकास में हाथ बंटाया।

8. मेज़ी काल में जापान ने औद्योगिक विकास शुरू कर दिया था अत: जापान में प्रशिक्षित श्रम पर्याप्त संख्या में उपलब्ध था। जापान की आर्थिक, प्रगति में उपर्युक्त घटकों के अतिरिक्त जिस अन्य घटक ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान दिया, वह जापान की विशिष्ट प्रबंधन शैली है।

'जेन' शैली

प्रबंध की जापानी शैली, जिसे विलियम आऊची ने 'जेड सिद्धांत' कहा, जापान की विशिष्ट संस्कृति 'जेन' से प्रभावित होने के कारण प्रबंध की 'जेन शैली' के नाम से विख्यात है। विलियम आऊची ने इस प्रबंध शैली की सात विशेषताओं—दीर्घकालीन नियोजन; सामूहिक निर्णयन; सामूहिक उत्तरदायित्व; अव्यक्त नियंत्रण प्रणाली; अविशिष्ट जीवन वृत्तिपथ; कर्मचारियों का समाजीकरण; मूल्यांकन एवं पदोन्नति का उल्लेख किया है। परंतु जेम्स एबेग्लीन ने जापानी प्रबंध शैली के तीन आधारस्तम्भ—आजीवन नियोजन; वरिष्ठता आधारित वेतन तथा पदोन्नति और उपक्रम आधारित श्रम संघ बताए हैं।

आजीवन नियोजन के अंतर्गत कर्मचारियों का चयन श्रम-बाजार के स्थान पर सीधे स्कूलों से कर लिया जाता है। इन्हें कार्य का कोई अनुभव नहीं होता। इस आजीवन वृत्ति एवं अवकाश योजना 'कोगाई' का उद्देश्य 'तनोको' तैयार करना होता है। 'तनोको' कर्मचारियों को कम्पनी की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप आजीवन प्रशिक्षण दिया जाता है। कार्यपरिवर्तन तथा फर्म के अंदर भिन्न-भिन्न दायित्वों वाले पदों पर स्थानान्तरण करके उन्हें 'अतिविशिष्ट वृत्ति-पथ वाला' या 'हरफनमौला' कर्मचारी बना दिया जाता है। 'तनोको' कर्मचारियों का मुख्य दायित्व गुणवत्ता-नियंत्रण, अप्रशिक्षित कर्मचारियों का मार्गदर्शन एवं प्रशिक्षण, उनके द्वारा प्रयुक्त औजारों का विकास एवं उत्पादन करना, मशीनरी की स्थापना, समायोजन और मरम्मत तथा आकस्मिक नए कार्यों को सम्पन्न करना होता है। इन 'तनोको' कर्मचारियों में दीर्घकालीन प्रशिक्षण के कारण संस्था के प्रति गहरी प्रतिबद्धता होती है और वे प्रबंध तंत्र से बेहतर सामंजस्य बिठा पाते हैं। इसके अतिरिक्त इनके कारण उत्पादन प्रणाली में लोच भी आ जाता है।

इस प्रबंध शैली में निष्पादन मूल्यांकन, जो कर्मचारियों के अर्द्धवार्षिक बोनस की राशि तथा पदोन्नति का आधार होता है, का विशिष्ट स्वरूप है। इस मूल्यांकन प्रणाली में कर्मचारी के कार्य सीखने की योग्यता, दूसरे कर्मचारियों के साथ सहयोग करने एवं लेने की योग्यता, तथा कनिष्ठ कर्मिकों को प्रशिक्षित करने की योग्यता को भी दृष्टिगत रखा जाता है।

जापान का प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पाद भी अपने प्रतिस्पर्द्धियों से कहीं अधिक है। जापान की इस आर्थिक प्रगति का सकारात्मक प्रभाव वहां मानव-कल्याण पर भी पड़ा जो जन्मदर, मृत्युदर तथा नवजात शिशु मृत्युदर के आंकड़ों से परिलक्षित होता है।

डेन्सन मॉडल, जो वरिष्ठता-आधारित मजदूरी-प्रणाली का आधार है, में एक कार्मिक की मजदूरी को तीन भागों में बांटा जाता है मानक मजदूरी, जो कर्मचारी एवं उसके परिवार के व्ययों, उसकी योग्यता एवं वरिष्ठता को ध्यान में रखकर दी जाती है; अमानक मजदूरी, जो उसके कार्य को दृष्टिगत रखते हुए दी जाती है; तथा अर्द्ध-वार्षिक बोनस।

कम्पनी आधारित श्रम-संघ के कारण बाह्य हस्तक्षेप की संभावना कम रहती है तथा श्रम-संघ और प्रबंध-तंत्र के मध्य बेहतर आपसी समझ विकसित होती है। जापानी औद्योगिक संस्थानों में श्रम एवं प्रबंध के बीच परिवार जैसे संबंध होने के कारण औद्योगिक शांति रहती हैं।

जेन शैली से 'कनबन' अर्थात कार्य को समयान्तर्गत समाप्त करना तथा अल्पलागत में स्वचालीकरण के उद्देश्य पूरा होने के साही 'कैजेन' सुझाव व्यवस्था में भी सहयोग मिलता है। 'कैजेन' के अंतर्गत संस्था के विकास, आधुनिकीकरण या नवीन योजना के संबंध में कर्मचारियों से सुझाव आमंत्रित करके उन पर विचार-विमर्श किया जाता है। इससे संस्था को तीव्र प्रतिस्पर्द्धा के वातावरण का सामना करने में सहायता मिलती है।

जापानी प्रबंध व्यवस्था का एक अन्य पहलू कम्पनी-संगठन भी है। जापानी कम्पनी 'कैसा' त्रिपक्षीय होती है। प्रथम, उर्ध्वाधर संगठन में मूल कम्पनी को कच्चा माल या अर्द्धनिर्मित माल की आपूर्ति करने वाली सहायक कम्पनियां होती हैं। ये कम्पनियां स्वतंत्र होती हैं किंतु मूल कम्पनी इनके निर्णय को प्रभावित करने की क्षमता रखती है। द्वितीय, वितरकों का जाल होता है जो स्वतंत्र होते हैं लेकिन अनुबंध द्वारा मूल कम्पनी से जुड़े रहते हैं। तृतीय, विभिन्न कम्पनियों के मध्य क्षैतिज समूहन होता है। इस क्षैतिज समूहन को 'कैरेत्सू' कहा जाता है जिनका विकास पूर्व में प्रचलित 'जाईबत्सू' के पतन के पश्चात हुआ।

जापानी प्रबंध व्यवस्था ने औद्योगिक शांति की स्थापना की, कार्मिकों के मनोबल को ऊंचा किया तथा प्रबंध में कार्मिकों के महत्वपूर्ण सुझावों से इन्वेंटरी लागत नियंत्रण, स्थायी पूंजी में बचत, गुणवत्ता सुधार, बेहतर औद्योगिक वातावरण का निर्माण संभव बनाया। फलत: जापान औद्योगिक प्रगति के पथ पर अग्रसर हुआ। ❑

(लेखक शिमला के भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान के वाणिज्य विभाग से सम्बद्ध हैं।)

आमदनी बढ़ाने के लिए मखाने की खेती

○ जी.पी. रेड्डी

बिहार में मखाने की खेती और उत्पादन को उद्योग का दर्जा दिए जाने की सरकारी घोषणा एक शुभ संकेत है। उड़ीसा और पश्चिम बंगाल जैसे पूर्वी भारत के अन्य राज्यों में जमीन में पानी जमा होना एक बड़ी समस्या है। यहां की राज्य सरकारों को भी मखाने की खेती को इसी तरह का दर्जा देना चाहिए क्योंकि इसकी फसल जमा हुए पानी में उगाई जा सकती है।

मखाने (यूराइल फेरोक्स सेलिस्बरी) को अंग्रेजी में 'गोर्गोन नट' और 'फॉक्स नट' आदि नामों से भी जाना जाता है। यह उत्तरी बिहार में मिथिलांचल की सबसे पुरानी नकदी फसल है। ऐसा माना जाता है कि मखाना समशीतोष्ण जलवायु का पौधा है जो पक्षियों के माध्यम से दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में आया। भारत में भी मखाना समशीतोष्ण जलवायु वाले स्थानों—जम्मू कश्मीर की झीलों में प्राकृतिक रूप से पैदा होता है। लेकिन इस पौधे ने भारत में ऊष्ण कटिबंधीय जलवायु में भी अनुकूलन करना सीख लिया है और उत्तर-पश्चिमी भारत के विभिन्न भागों में प्राकृतिक रूप से वन्य पौधे के रूप में उगाया जाता है। लेकिन इस समय मिथिलांचल इसके उगने का प्रमुख क्षेत्र है जहां दरभंगा, मधुबनी, समस्तीपुर और सहरसा जिलों में पूर्ण रूप से तथा मुजफ्फरपुर, चंपारन और पूर्णिया जिलों में आंशिक रूप से यह उगता है। वैसे मंचूरिया में इस झीलों में प्राकृतिक रूप से उगने वाले पौधे के रूप में पाया गया है। इतना ही नहीं, नेपाल, बांग्लादेश, कोरिया और उत्तरी अमेरिका के कुछ इलाकों में इसे उगाया भी जाता है।

मिथिला की भौगोलिक संरचना इस प्रकार की है कि यहां अंतर्देशीय जल संसाधनों की कोई कमी नहीं है। यहां मौसमी तालाबों के साथ-साथ पूरे साल पानी से भरे रहने वाले तालाब, झीलें, जलाशय और नदियां मौजूद हैं। इन जल स्रोतों में मृतजीवी वनस्पतियां भरपूर संख्या में पाई जाती हैं। इन प्रजातियों की पौष्टिकता और औषधीय, पारिस्थितिकीय तथा आर्थिक महत्व को देखते हुए इनकी ओर विशेष रूप से ध्यान देना आवश्यक है। तालाब की मिट्टी में

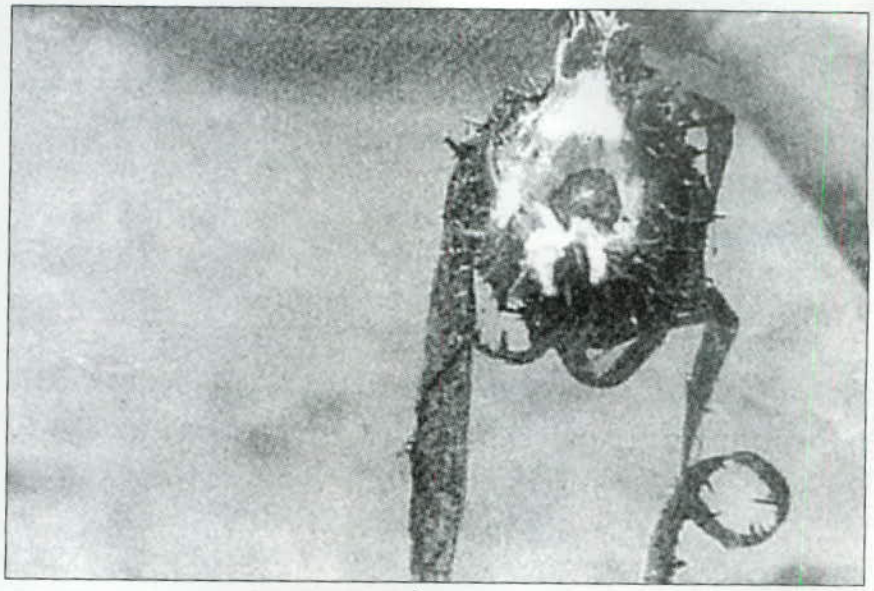

मखाने का फल

पौधों के लिए पोषक तत्व आस-पास की कृषि योग्य भूमि से काफी अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। पानी की सतह पर फैली पत्तियों के नीचे ऑक्सीजन की कमी के कारण पौधों के लिए आवश्यक मैक्रो और माइक्रो न्यूट्रिएंट्स पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो जाते हैं।

मिथिलांचल में मखाने की खेती 10 हजार एकड़ से अधिक जमीन पर होती है। इसका वार्षिक उत्पादन करीब 5 से 7 अरब टन के बराबर है। यहां मखाने की खेती करीब 25 हजार तालाबों में की जाती है जिनमें से करीब 10 हजार सरकारी तालाब हैं। मखाने के बीज खाए जाते हैं और इन्हें कच्चा या भूनकर बेचा और निर्यात किया जाता है। पानी में उगने वाली इस फसल की पौष्टिकता का स्तर बहुत ऊंचा होता है और अनुकूल परिस्थितियों वाले तालाबों में यह आसानी से तथा कम लागत में उगाई जा सकती है।

जिस तालाब में मखाने की खेती होती है उसमें पानी की गहराई अक्तूबर-नवम्बर में डेढ़ से दो मीटर तक रहनी जरूरी है। गर्मियों में मई-जून के महीने में पानी की गहराई करीब एक मीटर रहनी चाहिए। मखाने की बुआई का समय नवम्बर-दिसम्बर है। इसके बीज आमतौर पर काले और गोल होते हैं और इनके बाहर मोटा और कठोर बाहरी छिलका होता है। बिजाई की दर बीजों के आकार के अनुसार घटती-बढ़ती है। एक हेक्टेयर जमीन में बुआई के लिए 125 किलोग्राम बीज पर्याप्त होता है। अगर बीज का अंकुरण मामूली हो रहा हो तो अप्रैल-मई में पौध लगाई जाती है।

मखाने की फसल अगस्त-सितम्बर में समेटी जाती है। बीजों के पुष्ट हो जाने पर पुष्ट वृंत और सूखी पत्तियां पानी में सड़ने लगती हैं। फलियां फट जाती हैं और पानी में तैरने लगती हैं। इस तरह जो बीज पानी की सतह पर इकट्ठा हो जाते हैं उन्हीं को इकट्ठा कर लिया जाता है। इकट्ठा किए गए बीजों की पैरों से मंड़ाई की जाती है ताकि इनके बाहर का छिलका अलग हो जाए। इसके बाद बीज को भून लिया जाता है। भुने हुए बीजों को गर्मागरम हालत में लकड़ी की मूसली से कूटा जाता है। बीज के कवच के अंदर बने दबाव से बाहरी छिलका फट जाता है और बीज छिटककर बाहर आ जाता है। कच्चे मखाने के बीज को खेती के लिए सुरक्षित रख लिया जाता है जबकि भुना हुआ मखाना खाने के काम आता है।

मखाना सिंचाई का एक दृश्य

मखाने में पौष्टिक तत्व पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। मखानों में कैलोरी भी सामान्य भोजन या कार्बोहाइड्रेट से भरपूर खाद्य पदार्थों में पाई जाने वाली कैलोरी की मात्रा के बराबर होती है। हालांकि इसमें प्रोटीन की मात्रा कम होती है (10-12 प्रतिशत), लेकिन पौष्टिकता की दृष्टि से यह पेड़-पौधों और जीव-जंतुओं से प्राप्त होने वाले खाद्य पदार्थों से कहीं बेहतर है। इसका कारण यह है कि इसमें अमीनो एसिड का सूचकांक और आर्जीनाइन एवं लाइसिन/प्रोलाइन का अनुपात काफी ऊंचा (89-93 प्रतिशत) होता है। मखाने में ल्यूसीन और आइसोल्यूसीन का अनुपात भी ऊंचा होता है। इसका कैलोरीफिक विश्लेषण (के कैल 100 ग्राम) 328 है। इसमें लौह तत्व की मात्रा और कैरोटीन 1.4 मिलीग्राम, खनिज तत्वों की मात्रा 00.5 प्रतिशत और नमी की मात्रा 12.8 प्रतिशत होती है। सबसे बड़ी बात यह है कि इसमें कोलेस्टरॉल नहीं पाया जाता। मखाना खाने में बड़ा स्वादिष्ट होता है और भोजन के विकल्प का काम बखूबी कर सकता है। इसका आटा अरारोट के विकल्प के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। मखाने से आसानी से ऐसे व्यंजन बनाए जा सकते हैं जिन्हें सीधे खाया जा सकता है। जैसे—इसमें नमक या चीनी मिलाकर इसे खाया जा सकता है। इसे सुखाकर इसका आटा बनाया जा सकता है और इसे टुकड़ों का रूप भी दिया जा सकता है। इसे बिना अनाज वाला भोजन यानी फलाहार भी माना जाता है। मक्खन में भूनकर और नमक मिलाकर मखाने को चाय के साथ नाश्ते की तरह खाया जा सकता है। मखाने और इससे बने आटे का इस्तेमाल कई स्वादिष्ट व्यंजन जैसे—मिठाइयां, सब्जियां, सलाद और चिवड़ा आदि बनाने में किया जाता है। धार्मिक अनुष्ठानों में देवी-देवताओं को भोग लगाने में जो पंचमेवा उपयोग में लाए जाते हैं, उनमें मखाना भी शामिल है। इसकी

(शेष पृष्ठ 43 पर)

धर्म-आधारित पर्यटन का उत्कृष्ट उदाहरण माता वैष्णव देवी

○ मनीष श्रीवास्तव

घरेलू पर्यटन बढ़ाने का एक बेहतर विकल्प धर्म-आधारित पर्यटन का विकास है। जम्मू और कश्मीर राज्य में यद्यपि पर्यटन विकास की असीम संभावनाएं मौजूद हैं परंतु धर्म-आधारित पर्यटन का विकास अभी यहां अपनी किशोरावस्था में है। केंद्र सरकार ने जहां विदेशी पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए विभिन्न पैकेजों एवं रियायतों की घोषणा की है, वहीं राज्य सरकार ने भी पर्यटन क्षेत्र में आने वाली विभिन्न बाधाओं को दूर करने का प्रयास किया है।

एक अदृश्य, अलौकिक, अति मानवीय शक्ति, जो इस सृष्टि को प्रारंभ से ही एक व्यवस्थित गति एवं उर्जा प्रदान करती आई है उसके आगे मानव हमेशा से ही नतमस्तक होता आया है। इसका आधार सदैव भय, श्रद्धा, भक्ति एवं पवित्रता का सम्मिश्रण रहा है। आदिम एवं आधुनिक दोनों समाजों में धार्मिक विश्वास किसी न किसी रूप में अपनी अलग जगह बनाए हुए है। संसार के लगभग सभी धर्मों के अनुयायी अपने पवित्र पूजागाहों, स्थलों की यात्रा एवं दर्शन को एक पवित्र एवं फलदायक कार्य मानते आए हैं।

भारतवर्ष के उत्तर में स्थित जम्मू कश्मीर राज्य अपने प्राकृतिक सौंदर्य के साथ-साथ धार्मिक स्थलों की दृष्टि से भी अत्यधिक संपन्न है। यहां की तीर्थयात्रा एवं भ्रमण का इतिहास काफी पुराना है। कल्हण कृत 'राजतरंगिणी' तथा 'नीलमत पुराण' के अनुसार, कश्मीर की घाटी पहले बहुत बड़ी झील थी। पौराणिक आख्यानों के अनुसार कश्यप ऋषि के नाम पर इस क्षेत्र का नाम 'कश्मीर' प्रचलित हुआ। जम्मू-कश्मीर राज्य की नैसर्गिक मनोरम छटाओं में लद्दाख और लेह क्षेत्र चार चांद लगाते हैं। यहां स्थित द्रास विश्व का दूसरा सबसे ठंडा स्थाई निवास वाला गांव है। यह पूरा क्षेत्र बौद्ध मठों से भरा पड़ा है। कश्मीर को भारत का 'स्विट्जरलैंड' कहा जाता है जबकि इसकी राजधानी श्रीनगर को 'झीलों का नगर' एवं 'फूलों की नगरी' आदि उपनामों से भी जाना जाता रहा है।

वर्तमान जम्मू और कश्मीर राज्य की सीमाओं के अंदर धार्मिक केंद्रों के अतिरिक्त पर्यटन-केंद्र भी बड़ी संख्या में मौजूद हैं। ऊंचाई तथा श्रीनगर से 87 किलोमीटर की दूरी पर सोनमर्ग (3000 मीटर ऊंचाई) जम्मू से 110 किलोमीटर दूर पटनीटॉप, सानासार 129 किलोमीटर, बातोते 125 किलोमीटर, जाजार कोटली, अखनुर इत्यादि प्रमुख पर्यटन स्थल है। इनके अतिरिक्त झीलों में वुलर, मानसबल, मंधार बल, शेषनाग, पेंगोंग, मानसर इत्यादि है। यहां के प्रमुख राष्ट्रीय उद्यानों एवं अभ्यारण्यों में दचिगाम अभ्यारण्य (श्रीनगर), हेमिस किश्तवार, जसरोटा, नान्दी, लुंगनाग, जैवमंडल रिजर्व-श्रीनगर इत्यादि प्रमुख आकर्षण हैं। साथ ही विभिन्न पर्वतों की हिमाच्छादित चोटियां भी प्राकृतिक सौंदर्य का ऐसा मनोरम एवं दिलकश दृश्य प्रस्तुत करती हैं जिनका प्राकृतिक सौंदर्य अवर्णनीय है।

सदियों से बड़ी संख्या में पर्यटक आनंद उठाने के लिए देश-विदेश से यहां आते रहे हैं। मूलतः पर्वतीय क्षेत्र तथा मनोरम अलौकिक प्राकृतिक छटाओं का गढ़ होने के कारण यहां सभी वर्ग एवं आयु के पर्यटकों को संतुष्टि प्राप्त होती है। आज पर्यटन राष्ट्र के लिए आर्थिक संसाधन जुटाने तथा रोजगार सृजन का महत्वपूर्ण स्रोत बन गया है। राज्य की अर्थव्यवस्था में एक ओर जहां घरेलू पर्यटकों का अत्यधिक महत्व है,

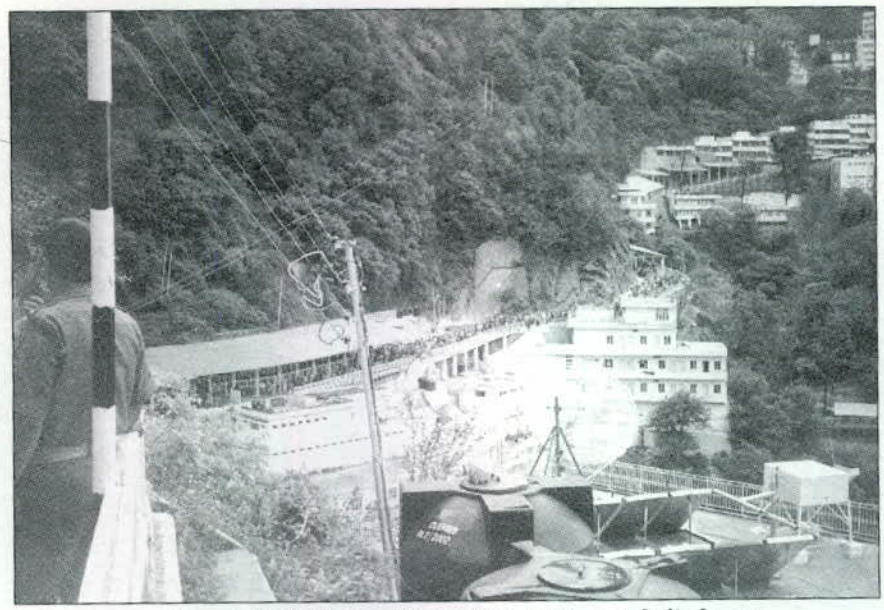

माता वैष्णव देवी की पवित्र गुफा में प्रवेश के लिए पंक्तिबद्ध यात्रियों की कतार

वहीं विदेशी पर्यटक भी उसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

घरेलू पर्यटन बढ़ाने का एक बेहतर विकल्प धर्म-आधारित पर्यटन का विकास है। इसमें दो मत नहीं कि जम्मू और कश्मीर राज्य में पर्यटन विकास की असीम संभावनाएं मौजूद हैं। परंतु धर्म-आधारित पर्यटन का विकास अभी यहां अपनी किशोरावस्था में है। केंद्र सरकार ने जहां विदेशी पर्यटकों को इस क्षेत्र में आकर्षित करने के लिए विभिन्न पैकेजों एवं रियायतों की घोषणा की है, वहीं राज्य सरकार ने भी पर्यटन क्षेत्र में आने वाली विभिन्न बाधाओं को दूर करने का प्रयास किया है। जम्मू और कश्मीर में पर्यटकों के हितों की रक्षा के लिए राज्य सरकार ने विशेष विधायिका निर्मित एवं क्रियान्वित की है जो 'जम्मू और कश्मीर पर्यटन उद्योग पंजीकरण कानून' के नाम से जानी जाती है। इस कानून के अंतर्गत राज्य के पर्यटन विभाग के अधिकारियों को न्यायिक शक्तियां प्रदान की गई हैं, जिसके अंतर्गत पर्यटकों को यदि ठगा गया हो, उनसे ज्यादा वसूली की गई हो या तंग किया जा रहा हो, तो गिरफ्तारी का अधिकार भी शामिल है। इसके अतिरिक्त राज्य सरकार ने सभी पर्यटकों, यात्रियों को सलाह दी है कि किसी भी प्रकार की जानकारी या मदद के लिए वे नजदीक के पर्यटन अधिकारी या उप निदेशक, पर्यटन के पास किसी भी परेशानी की शिकायत दर्ज करा सकते हैं।

राज्य सरकार के धर्म-आधारित पर्यटन के विकास को बढ़ावा देने के एक कदम के रूप में श्री माता वैष्णव देवी स्थापन बोर्ड को लिया जा सकता है। भौगोलिक रूप से श्री माता वैष्णव देवी की पवित्र गुफा तक पहुंच पाना एक प्रमुख समस्या रही है। 1986 में बोर्ड की स्थापना के पूर्व तक कटरा शहर, जहां से माता की पवित्र गुफा तक 12.5 किलोमीटर की यात्रा प्रारंभ की जाती है, से गुफा तक सिर्फ कच्ची, पतली पगडंडियों के सहारे पहुंचा जा सकता था, जिससे यात्रा में लगने वाला कुल समय दो दिन और कभी-कभी उससे भी ज्यादा होता था। यात्रा के मार्ग की लंबाई ज्यादा थी सो अलग। 30 अगस्त, 1986 के श्री माता वैष्णव देवी स्थापन अध्यादेश द्वारा स्थापित 'श्री माता वैष्णव देवी स्थापन बोर्ड' ने इस क्षेत्र में व्यापक सुधार एवं विकास कार्य किए हैं। बोर्ड द्वारा यात्रियों के लिए आवासीय परिसरों का निर्माण, अमानती घर, चिकित्सा सुविधाओं का विकास, भोजनालयों, यात्री पंजीकरण, (एवं बीमा) पूछताछ, अल्पाहार, स्मृति चिह्न एवं प्रकाशन, दूरसंचार, उद्घोषणा, पुलिस, रेल आरक्षण के अतिरिक्त अधिक जानकारी के लिए एक वेबसाइट www.maavaishnodevi.org आदि का संचालन किया जा रहा है तथा किसी भी प्रकार की पूछताछ के लिए Email: helpdesk@maavaishnodevi.org भी उपलब्ध है। सामुदायिक विकास के लिए भी बोर्ड ने कई कार्यक्रम चलाए हैं तथा वर्तमान में भी कई प्रस्तावित हैं, जिनमें

वर्ष	कुल यात्री
1960	2,00,000(+)*
1986	1,395,000
1987	1,857,000
1988	1,992,000
1989	2,312,000
1990	2,169,000
1991	3,115,000
1992	3,516,000
1993	3,368,000
1994	3,704,000
1995	4,011,000
1996	4,335,000
1997	4,434,000
1998	4,622,000
1999	4,670,000
2000	5,217,000
2001	5,057,000
2002	8,35,247**

*सेन्सस ऑफ इंडिया : वोल्यूम 6, खंड 6, संख्या 20 विलेज सर्व मोनोग्रॉफ, कटरा ए विलेज सर्वे 1961

**अध्ययन के समय अप्रैल 14, 2002 तक 8,35,247 लोग माता वैष्णव देवी, कटरा की यात्रा संपन्न कर चुके थे।

सर्वप्रमुख है—इस क्षेत्र में शिक्षा के विकास के लिए श्री माता वैष्णव देवी विश्वविद्यालय की स्थापना।

श्री माता वैष्णव देवी स्थापना बोर्ड द्वारा प्रदत्त सुविधाएं तो प्रशंसनीय है ही, इसके प्रयासों से यहां पर्यटन को भी पर्याप्त बढ़ावा मिला है। इसकी सफलता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि जहां उसके स्थापना वर्ष 1986 में मात्र 14 लाख लोगों ने यहां की यात्रा की थी, 2000 में वह बढ़कर 52 लाख तक हो गई।

कटरा शहर के आस-पास कई ऐसे धार्मिक स्थल हैं जिसकी यात्रा माता वैष्णव देवी यात्रा के साथ-साथ की जाती है। इनमें कटरा से 5 किलो मीटर की दूरी पर स्थित है देवी पींडी, कटरा से 7 किलो मीटर की दूरी पर चीड़ के घने जंगलों के मध्य पहाड़ी पर स्थित है देवा माई मंदिर, 5 किलो मीटर की दूरी पर रियासी मार्ग पर स्थित है मां वैष्णव के प्रसिद्ध उपासक संत बाबा अघार जित्तो का मंदिर, कटरा से 10 किलो मीटर की दूरी पर स्थित है बाबा धनसर का मंदिर जहां पहुंचने के लिए लगभग 1 किलो मीटर की पैदल यात्रा करनी पड़ती है। यहां भगवान शिव की गुफा के अतिरिक्त एक छोटे से झरने के किनारे स्थित शेषनाग मंदिर स्थित है।

इस क्षेत्र में अपने हाल के अध्ययन के उपरांत विभिन्न वैयक्तिक अध्ययनों (केस स्टडीज) से यह बात उभरकर सामने आई कि श्री माता वैष्णव देवी के दिव्य स्थल पर प्रदत्त सुविधाओं के कारण यह स्थल कई मायनों में प्राकृतिक सौंदर्य का आनंद लेने वालों, विशेषकर ट्रैकिंग का रोमांच प्राप्त करने वालों एवं विविधता चाहने वालों का पसंदीदा स्थल बनता जा रहा है जहां माता का दर्शन उनका द्वितीयक चुनाव है। जिस माध्यम का विकास देवी का दर्शन सहज सुलभ करने के लिए किया गया, आज वही माध्यम लोगों का पहला लक्ष्य बनता जा रहा है। आखिर क्यों?

निष्कर्ष

राज्य का धर्माधारित पर्यटन उद्योग अभी अपनी किशोरावस्था से गुजर रहा है जबकि यहां पर्यटन विकास की असीम संभावनाएं हैं। आवश्यकता है इस दिशा में सही एवं ठोस कदम उठाने की। वर्तमान परिदृश्य के मद्देनजर निम्नांकित पहलुओं पर ध्यान देना ज्यादा हितकर हो सकता है। जम्मू-कश्मीर राज्य की पहाड़ियों पर भौगोलिक स्थिति के कारण कृषि, भारी उद्योग इत्यादि से आर्थिक संपन्नता प्राप्त कर पाना काफी कठिन है। इस कारण पर्यटन यहां एक ऐसे सशक्त स्रोत के रूप में मौजूद है जिसका भरपूर दोहन कर आर्थिक स्थिति को मजबूत बनाया जा सकता है। भारतवर्ष के अन्य धार्मिक स्थलों पर भी इस 'वैष्णवी मॉडल' का प्रयोग कर न सिर्फ राज्य सरकारें व्यापक आर्थिक लाभ प्राप्त कर सकती हैं बल्कि रोजगार, सामुदायिक कल्याण इत्यादि के नए द्वार भी खोल सकती है।

पर्यटन को धर्म-केंद्रित कर विकसित करते समय यह आवश्यक रूप से ध्यान में रखा जाना चाहिए कि उससे धार्मिक मर्यादा न टूटे एवं धर्म की गरिमा एवं परंपरागत भारतीय संस्कृति के स्वरूप का उल्लंघन न हो। यह बात सदा ही ध्यान में रखी जानी चाहिए कि ऐसे स्थल अपने मूल रूप में धार्मिक स्थल ही हैं।

सुझाव

व्यक्ति अपने जीवन में जहां मनोरंजनात्मक क्रियाओं यथा—खेल, पर्यटन, यात्रा इत्यादि द्वारा शारीरिक रूप से पुनः ताजगी प्राप्त करता है, वहीं अपने आराध्य देव को याद कर उनकी पूजा-अर्चना कर या अपने धार्मिक स्थलों की 'तीर्थयात्रा' द्वारा मनोवैज्ञानिक रूप से स्वयं को सुरक्षित महसूस करता है। ऐसे स्थलों पर भौतिकता एवं आध्यात्मिकता सम्मिलित रूप में उपस्थित होती है। अतः इन दोनों के सही अनुपात का निर्धारण आवश्यक तत्व है। पर्यटन को धर्म-केंद्रित कर विकसित करते समय यह आवश्यक रूप से ध्यान में रखा जाना चाहिए कि उससे धार्मिक मर्यादा न टूटे एवं धर्म की गरिमा एवं परंपरागत भारतीय संस्कृति के स्वरूप का उल्लंघन न हो। यह बात सदा ही ध्यान में रखी जानी चाहिए कि ऐसे स्थल अपने मूल रूप में धार्मिक स्थल ही हैं। अतः ऐसे स्थलों में प्रदत्त सुविधाओं की भी अपनी सीमाएं होनी चाहिए। आगंतुकों को धर्म की मर्यादा एवं गरिमा के प्रति जागरूक बनाया जाना चाहिए। यात्रियों के व्यवहार एवं परिधान से संबद्ध नियमों का निर्माण एवं क्रियान्वयन भी योजना का एक महत्वपूर्ण पक्ष होना चाहिए। यदि अनजाने में भी किसी प्रकार की क्रियायों द्वारा इनकी अवमानना होती हो तो निस्संदेह यह उन हजारों-लाखों लोगों की आस्था को ठेस पहुंचाएगा। पर्यटन के साथ जुड़ा एक अन्य पहलू है—'प्रदूषण'। पर्यटन विकास के साथ-साथ उससे उत्पन्न प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए उच्च तकनीकों का इस्तेमाल आवश्यक है। ये तकनीकें ऐसी होनी चाहिए जो पर्यावरण को किसी भी प्रकार का नुकसान नहीं पहुंचाएं तभी लंबे समय तक हम इन क्षेत्रों से आर्थिक दोहन कर सकते हैं। ❑

(लेखक भारतीय मानव विज्ञान सर्वेक्षण, उत्तर-पश्चिम क्षेत्रीय केन्द्र (संस्कृति मंत्रालय, भारत सकार) देहरादून, उत्तरांचल में शोध अधिसदस्य हैं।)

आज है **धर्मनिरपेक्षता** की 133 वीं जयंती।

▪

आज है **अहिंसा** की 133 वीं जयंती।

▪

आज है **निःस्वार्थता** की 133 वीं जयंती।

▪

आज है **आत्मनिर्भरता** की 133 वीं जयंती।

▪

आज है **सत्याग्रह** की 133 वीं जयंती।

▪

आईए **राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी** को उनके 133 वें जन्म दिवस के अवसर पर याद करते हुए हम उनके उन सिद्धान्तों को न भूलें जिनके लिए वे जिये और मरे।

DIP/1260/2002/AKM

मेरी दिल्ली
मैं ही संवारूं

दिल्ली
सरकार

भागीदारी

(पृष्ठ 7 का शेष)

है—'लालयेत पंचवर्षाणि, दशवर्षाणि तु ताड़येत, प्राप्ते तु षोडशै वर्षे, पुत्रं मित्र-वदाचरेत।' कितनी सोची-समझी-परखी सीख थी। पर आज तो पांच वर्षों के अंदर ही सारे बोझ-बीज डाल दिए जाते हैं। उच्च मध्य वर्ग की और ही समस्या है। मां-बाप द्वारा जरूरत से अधिक ध्यान। पौष्टिक भोजन ज्यादा ही खिलाना। ये बच्चे फास्ट फूड भी अधिक ले रहे हैं। मुंबई में हाल ही में एक समस्या उजागर हुई। इन घरों में बच्चे खाना ही नहीं खाते थे। दरअसल भूख लगे, तब तो खाएं। पर किसी मां ने अपने घर में तोता पाला। उसे खिलाते हुए दिखाकर अपने लाड़ले को खिलाने लगी। किटी पार्टी में सखियों को बताया। फिर क्या था! तोता बेचने वालों की चल गई। एक सप्ताह में छह सौ तोते बिके। मध्यम वर्ग में एक और भयानक स्थिति देखने को मिलती है। बच्चे के मुंह में बड़े-बड़े निवाले डालना। मां की जल्दी है या बच्चों को भी विद्यालय भेजने की जल्दी है। उनके मुंह में ठूंस-ठूंसकर खिलाना। किसी भी दृष्टि से यह उचित नहीं। दूसरी ओर अधिकांश बच्चे बिना कुछ खाए विद्यालय जाते हैं।

बचपन-निर्माण की शहरी परिस्थितियों के अंदर झांकने का मतलब यह कदापि नहीं कि ये परिस्थितियां ही बदल दी जाए। बदली जा भी नहीं सकती। यह भी संभव नहीं कि माताओं को काम पर ही न भेजा जाए। इसकी जरूरत भी नहीं। कामकाजी महिलाओं के प्रजनन और शिशु पालन के लिए अधिक अवकाश की ओर ध्यान दिया गया है और भी देने की आवश्यकता है। पालनाघरों और नर्सरी विद्यालयों की स्थिति भी सुधारने की जरूरत है, जैसे—आयाओं का विशेष प्रशिक्षण और बच्चों की जरूरत के अनुसार पालनाघरों में सुख-सुविधाएं उपलब्ध कराना। बदली हुई परिस्थितियों में माता-पिता के मन को भी उचित प्रशिक्षण द्वारा बदलने की आवश्यकता है। वे अपनी महत्वाकांक्षाओं का बोझ बच्चों पर न डालें, उन्हें थोड़ा सहज रहने दें, अपनी अति व्यस्तता में से कुछ समय निकालकर बच्चों को सुकून का समय दें। संभव हो तो माता-पिता को साथ रखें। तीन पीढ़ियों का साथ बच्चों के चतुर्दिक विकास के लिए समुचित स्थिति है। और भी अनेक उपाय ढूंढे जा सकते हैं। परंतु उपचार ढूंढने से पूर्व बीमारी का पता लगना आवश्यक है। मैंने बच्चों का बचपन लूटने वाली थोड़ी-सी परिस्थितियों को ढूंढा है। हम सबको इन बिंदुओं पर विचार करना है। बहुत-सी बीमारियां थोड़े विचार से ही दूर की जा सकती हैं। ❑

(लेखिका केंद्रीय समाज कल्याण बोर्ड की अध्यक्ष एवं स्वतंत्र पत्रकार हैं।)

IAS PCS 2003-04

द क्वेस्ट

An IAS INSTITUTE with a difference

इतिहास ...द क्वेस्ट के साथ

एक प्रख्यात शिक्षक द्वारा

सामान्य अध्ययन

Ravi R. Kumar और विशेषज्ञों द्वारा

पूर्णतः वातानुकूलित कक्षाएँ
हॉस्टल सुविधा उपलब्ध

- सिविल सेवा परीक्षा की जरूरतों एवं एप्रोच पर सघन चर्चा
- मॉडल उत्तर कैसे लिखें?
- मानचित्र अध्ययन पर विशेष जोर– मानचित्र विशेषज्ञ द्वारा
- इतिहास का अध्ययन–इसकी समग्रता में
- इतिहास की मूल आत्मा से साक्षात्कार
- अधिक अंकों के लिए एक सफल रणनीति क्या हो?
- GS के नए आयामों का विस्तृत विश्लेषण
- क्या पढ़े और क्या नहीं पढ़ें?
- सत्र के अन्त में विशेष Orientation Classes
- समय प्रबंधन–एक आवश्यक तत्त्व

निःशुल्क परिचर्चा-15 एवं 16 नवम्बर (हिन्दी माध्यम)/18 एवं 19 नवम्बर (अंग्रेजी माध्यम) | निःशुल्क परिचर्चा-21 एवं 22 नवम्बर (अंग्रेजी माध्यम)/24 एवं 25 नवम्बर (हिन्दी माध्यम)

2003-04 परीक्षाओं के लिए प्रवेश प्रारम्भ

उत्तरांचल PCS हेतु विशेष बैच 1 नवम्बर 2002 से

पाली, हिन्दी साहित्य और अन्य विषय

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें

Rajnis Kr. Pandey
Director (HRD)
Neha Madan
Counsellor

2274, हडसन लाईन्स, किंग्जवे कैम्प, दिल्ली-110009
Ph. :(011) 7452271, 7458079, 9811136772

लोक प्रशासन

By **Atul Lohiya**

(A person who believes in hard work and scientific approach)

ADMISSION OPEN

From 10th Nov. 2002

NEW BATCH STARTS FROM 15th Nov. & 5th Dec. 2002

लोक प्रशासन का चयन
उचित निर्णय
और
व्यावसायिक दृष्टिकोण

लोक प्रशासन

Mains के साथ-साथ

Pre. के लिये भी

बेहतर विकल्प

'अतुल लोहिया'

शिक्षक, मार्गदर्शक और मित्र भी

पत्राचार पाठ्यक्रम भी उपलब्ध

MAINS - 2,000/-

MAINS + PRE. - 3,000/-

डाक खर्च - 200/- अतिरिक्त

*There's never a **Wrong** time, To do the **Right** thing*

AN INSTITUTE OF PUBLIC ADMINISTRATION

FLAT No. 301, TOP FLOOR, A-14, BHANDARI HOUSE COMM. COMPLEX, BEHIND BATRA CINEMA, DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009 • Ph.: 7655134. CELL.: 9810651005

भारतीय खेल : दशा एवं दिशा

○ उमाशंकर भट्ट

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय खिलाड़ी हमेशा ही पिछली पांत में नजर आते हैं। फिर भी हॉकी एवं क्रिकेट को छोड़ दें तो व्यक्तिगत खेलों में कुछ भारतीय खिलाड़ियों ने विश्व का ध्यान अपनी ओर खींचा है। आजादी के 55 साल बाद भी खेलों तथा खेल संघों के लिए कोई स्पष्ट खेल नीति नहीं है। खेल एवं खिलाड़ी के उत्थान के लिए अत्यन्त आवश्यक है। खेल संघों में व्याप्त भ्रष्टाचार, पद-लोलुपता तथा भाई-भतीजावाद को समाप्त करना पड़ेगा। तभी प्रतिभाएं सामने आएंगी।

गत जून माह में सारा विश्व फुटबाल के बुखार से पीड़ित था। मीडिया जगत का फोकस जापान एवं कोरिया में जाकर सिमट गया था। निश्चय ही यह एक ऐसा आयोजन था जिसमें हर राष्ट्र, हर व्यक्ति प्रतिनिधित्व पाकर अपने को गौरवान्वित महसूस करता। एक अरब मानव शक्ति वाला भारत मायूस था, हर खेल प्रेमी के दिल में वही पुराना सवाल उमड़ रहा था, आखिर क्यों हमारी टीम उस स्तर पर नहीं खेल पाती? क्यों हमारे खिलाड़ी खेल जगत में फिसड्डी साबित हो रहे हैं? सवाल कई हैं। खिलाड़ियों, खेल संघों तथा सरकार को अभी इसका जवाब ढूंढना है।

उपलब्धियां

भारत में खेलों को बढ़ावा देने के लिए सरकार ने पहला संगठित प्रयास 1961 में पटियाला में नेताजी सुभाष राष्ट्रीय खेल संस्थान की स्थापना करके की। महाराजा पटियाला भूपेन्द्र सिंह के 350 एकड़ में बसे 'मोती महल' को इस संस्थान का रूप दिया गया। यहां श्रेष्ठ कोचों तथा आधुनिक सुविधाओं के द्वारा खिलाड़ियों को प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की गई। आज यह संस्थान अपनी तीन शाखाओं कलकत्ता, बैंगलोर तथा गांधी नगर के माध्यम से खिलाड़ियों के साथ-साथ प्रशिक्षकों को भी तैयार करने का मुख्य केन्द्र है। सरकार द्वारा खिलाड़ियों के प्रोत्साहन हेतु 1961 में ही 'अर्जुन पुरस्कार' की स्थापना की गई, यह उन खिलाड़ियों को प्रदान किया जाता है जो अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर श्रेष्ठ प्रदर्शन करते हैं। 1985 में देश को अच्छे खिलाड़ी देने वाले प्रशिक्षकों के लिए 'द्रोणाचार्य पुरस्कार' आरम्भ किए गए। 1994 से प्रतिष्ठित खिलाड़ियों के लिए 'पेंशन योजना' तथा अब ओलम्पिक, विश्व कप या एशियाई खेलों में पदक विजेताओं के लिए पुरस्कार देने की नीति बनाई गई है।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय खिलाड़ी हमेशा ही पिछली पांत में नजर आते हैं। फिर भी हॉकी एवं क्रिकेट को छोड़ दें तो व्यक्तिगत खेलों में कुछ भारतीय खिलाड़ियों ने विश्व का ध्यान अपनी ओर खींचा है।

हॉकी जो कि हमारा राष्ट्रीय खेल है जिस पर कभी भारतीय खिलाड़ियों का राज हुआ करता था। 1980 तक ओलम्पिक खेलों में भारत ने 8 स्वर्ण, 1 रजत तथा 2 कांस्य पदक जीते, वहीं भारत 1975 के क्वालालम्पुर हॉकी विश्व कप को भी जीत चुका है। आज हालत यह है कि भारतीय हॉकी गर्त में जा चुकी है, उसे अब विश्व कप और ओलम्पिक में खेलने के अवसर भी नहीं मिल पाते हैं।

क्रिकेट भारत का सबसे लोकप्रिय खेल है, भारतीय खेल प्रेमी क्रिकेटरों को सिर आंखों पर बिठाए रहते हैं। टेस्ट क्रिकेट खेलने वाले विश्व में मात्र 10 देश हैं। खेलों की महाशक्ति अमेरिका में अधिकांश लोग क्रिकेट को जानते तक नहीं, वहां बेसबाल, रग्बी तथा बास्केट बाल जैसे खेल लोकप्रिय हैं। इसके बावजूद भारत पिछले 20 साल से देश के बाहर कोई टेस्ट सीरीज नहीं जीत पाया है। उसकी अब तक की

सबसे बड़ी उपलब्धि कपिल की कप्तानी में 1983 का विश्वकप जीतना है।

फुटबाल में 50 एवं 60 का दशक भारत के लिए स्वर्ण काल माना जा सकता है। इस दौरान भारत ने दो बार एशियाड में स्वर्ण पदक जीता वहीं भारतीय टीम 1956 के मेलबोर्न ओलम्पिक के सेमीफाइनल में पहुंचने में सफल रही। पर, आज भारत दयनीय स्थिति में है, नेपाल सरीखी टीम को हराने में पापड़ बेलने पड़ रहे हैं। हालांकि 'नेशनल फुटबाल लीग' भारतीय फुटबाल का पुन: उद्धार करने में लगा है।

टेनिस विश्व के सबसे महंगे खेलों में एक है, इसमें भारतीय खिलाड़ी विश्व स्तर पर अपनी उपस्थिति दर्ज कराते रहे हैं। रामानाथन कृष्णन, विजय अमृतराज तथा पेस-भूपति की जोड़ी ने भारत के लिए काफी सम्मान अर्जित किया है। अब तक तीन बार—1966, 1974 तथा 1987 में भारत डेविस कप के फाइनल में प्रवेश कर चुका है। रामानाथन कृष्णन चार बार एशियाई चैम्पियन रहे तथा 1960 एवं 1961 के विम्बलडन सेमीफाइनल तक पहुंचे। वहीं लिएंडर पेस ने भारत को 1996 के अटलांटा ओलम्पिक में टेनिस की एकल प्रतियोगिता में कांस्य पदक दिलाया। 1999 में पेस-भूपति की जोड़ी ने चारों ग्रैंड स्लेम प्रतियोगिताओं के फाइनल में प्रवेश कर इतिहास रचा।

एथलेटिक्स में एशियाई खेलों में भारत का प्रदर्शन काफी अच्छा रहा है। मिल्खा सिंह, श्रीराम सिंह, विजय सिंह चौहान, गुरूबचन सिंह, पी.टी. ऊषा, ज्योतिर्मय सिकंदर जैसे खिलाड़ियों ने भारत को ढेरों सफलताएं दिलाई, पर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ये खिलाड़ी फिसड्डी साबित हुए। 1960 में मिल्खा सिंह तथा 1984 में पी.टी. ऊषा ओलम्पिक कांस्य पदक जीतने के काफी करीब थे, के अलावा भारतीय खिलाड़ियों ने निराश ही किया।

बैडमिंटन में नन्दू नाटेकर, 'रिटर्निंग मशीन' दिनेश खन्ना, सैय्यद मोदी जैसे कई उम्दा खिलाड़ी हुए हैं, पर बैडमिंटन के प्रतिष्ठित ऑल इंग्लैंड चैम्पियन-1980 में प्रकाश पादुकोण तथा 2001 में उनके ही शिष्य पुलेला गोपीचन्द की उपलब्धि बेमिसाल है।

हॉकी मैच का एक दृश्य

भारत में सदियों से कुश्ती खेला जा रहा है। गुरू-चेला परम्परा पर हर गांव, कस्बे में बड़े-बड़े दंगलों का आयोजन होता है, लेकिन इस खेल में हम अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कहीं भी नहीं टिकते। 1948 के ओलम्पिक में के.डी. जाधव के कांस्य, विश्व कुश्ती में विशम्भर सिंह के रजत तथा उदयचन्द के कांस्य ही हमारे पास दिखाने को हैं।

भारतीय मुक्केबाज एशियाई खेलों तथा राष्ट्रमंडल खेलों में ढेरों पदक जीत चुके हैं। भारतीय मुक्केबाजी जगत का गौरवपूर्ण दिन वह था जब पदम बहादुर मल ने 1962 के जकार्ता एशियाड में लाइटवेट वर्ग का स्वर्ण पदक जीता था उन्हें प्रतियोगिता का सर्वश्रेष्ठ मुक्केबाज घोषित किया गया, जबकि विश्वकप में दो खिलाड़ी—जोरमथंगा तथा देवराजन—कांस्य पदक जीतने में सफल रहे।

भारत्तोलन में भारतीय महिलाओं ने खूब नाम कमाया है। लौह महिला कुंजूरानी देवी को जहां 20वीं सदी की 100 श्रेष्ठ महिला खिलाड़ियों में चुना गया वहीं 2000 के सिडनी ओलम्पिक में भारत को इकलौता कांस्य पदक दिलाने का गौरव कर्णम मल्लेश्वरी को जाता है।

बिलियर्ड्स एवं स्नूकर में भारतीय खिलाड़ी विश्व स्तर पर अपनी सक्रिय उपस्थिति रखते हैं। अब तक तीन भारतीय विलियम जोंस, माइकल फरेरा तथा गीत सेठी—बिलियर्ड्स में विश्व चैम्पियन रह चुके हैं, वहीं स्नूकर में एक मात्र भारतीय ओम अग्रवाल विश्व चैम्पियनशिप जीतने में सफल रहें।

शतरंज भारतीय राजा-महाराजा का सदियों से प्रिय खेल रहा है। भारत को 80 के दशक में विश्वनाथन आनन्द के रूप में एक सितारा मिला, जिसने 2001 में तेहरान में विश्व चैम्पियन बनकर भारत का गौरव बढ़ाया। आनन्द से प्रेरित होकर आज भारत में शतरंज खिलाड़ियों की एक लंबी कतार तैयार खड़ी है। इसी का परिणाम है कि आज भारत के पास 6 पुरुष ग्रैंड मास्टर तथा दो महिला ग्रैंड मास्टर खिलाड़ी हैं।

पिछड़ने के कारण

आज खेल मनोरंजन का साधन मात्र नहीं है, यह एक अत्यंत लाभकारी व्यवसाय

का रूप धारण कर चुका है। खेलों में सफल होने का अर्थ है राष्ट्रीय गौरव में अभिवृद्धि के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति एवं विपुल आर्थिक लाभ। पश्चिमी देशों ने खेलों में नई तकनीक का उपयोग कर उन्हें गति दी है। प्रतिस्पर्धा दिनों-दिन बढ़ती ही जा रही है, खिलाड़ी अपने दमखम पर आसमान छूने को लालायित हैं, हर हाल में वे सफल होना चाहते हैं। आज आवश्यकता है वक्त के साथ चलने की जो देश समय के साथ खेलों में नई तकनीक नहीं अपना रहे हैं वे इस दौड़ में पिछड़ जाते हैं। दुर्भाग्य से भारत भी उनमें से एक है।

भारतीय खिलाड़ियों में 'किलर इंस्टिक्ट' का बेहद अभाव है। वे क्षणिक सफलताओं से संतुष्ट हो जाते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर को देखकर ही वे हार मान जाते हैं।

फुटबाल जो कि दमखम का खेल माना जाता है, भारत का स्थान इस खेल में विश्व में 115 से 120वें स्थान के बीच है। अगर हम विश्व की श्रेष्ठ टीमों के खिलाड़ियों से तुलना करें तो सहज ही भारत के पिछड़ने का कारण ज्ञात हो जाएगा। ब्राजील के खिलाड़ी रोनाल्डो जब गेंद को किक मारते हैं तो उनकी गति 90 मील प्रति घंटा से अधिक होती है, वहीं भारत के स्टार खिलाड़ी आई.एम. विजयन या वाई चुंक भूटिया अपनी किक को 60 मील प्रति घंटा की गति भी नहीं दे पाते हैं। इंग्लैंड का डेबिड बेकहम 90 मिनट के खेल में 9 मील दौड़ता है, क्या भारतीय खिलाड़ी इतना दौड़ सकता है? निश्चय ही नहीं। एक विम्बलडन विजेता खिलाड़ी 135 मील प्रति घंटा की रफ्तार से सर्विस करता है, और लिएंडर पेस 115 मील प्रति घंटा की रफ्तार से। इस स्थिति में विजेता बनने का सपना संजोना भ्रम ही है।

निम्न स्तरीय प्रशिक्षण तथा आधुनिक खेल उपकरणों के अभाव में भी हमारे खिलाड़ी विश्व स्तर पर पिछड़ जाते हैं। आज भी हमारे खिलाड़ी सदियों पुरानी पद्धति पर प्रशिक्षण पा रहे हैं। हॉकी खिलाड़ी यहां घास पर अभ्यास करता है, विश्व स्तर पर उसे एस्ट्रोटर्फ पर खेलना पड़ता है। पहलवान यहां अखाड़े में कुश्ती लड़ता है। विश्व स्तर पर उसे गद्दों पर लड़ना पड़ता है। हमारे धावक मिट्टी में दौड़ लगाते हैं, विश्व स्तर पर उन्हें सिन्थेटिक ट्रैक पर दौड़ना पड़ता है। इन परिस्थितियों में आप कैसे खिलाड़ियों से पदक की कामना कर सकते हैं। भारत में दो-चार मुख्य स्टेडियमों को छोड़ दें तो कहीं भी एस्ट्रोटर्फ वाले मैदान नहीं है जबकि हालैंड जो कि हाकी की विश्व शक्ति है के स्कूल स्तर के मैदान भी एस्ट्रोटर्फ के बने हैं। आस्ट्रेलिया की एक क्रिकेट अकादेमी यह देखने के लिए 5 कैमरों का इस्तेमाल करती है कि कहीं गेंदबाज ज्यादा लंबे डग तो नहीं भर रहा है। हर अभ्यास सत्र की वीडियो रिकार्डिंग की जाती है, ताकि खिलाड़ी बाद में अपनी कमियों से वाकिफ हो सके।

भारतीय खिलाड़ी अभी विश्व पटल पर सौ साल पीछे हैं। उन्हें वह स्तर प्राप्त करने के लिए बहुत मेहनत की आवश्यकता है। जरूरत इस बात की है कि खेलों के विकास के लिए एक दीर्घकालिक नीति का निर्माण किया जाए।

खेल संघों में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा खेलों के लिए सरकार के पास एक स्पष्ट नीति का अभाव है। खेल संघों में अभी भी भाई-भतीजावाद हावी है। जो सही मायने में प्रतिभाएं हैं, वह सामने नहीं आ पा रही। राष्ट्रीय परिदृश्य में आने के लिए उन्हें बहुत संघर्ष करना पड़ता है, प्रतिभा के साथ-साथ पहुंच एवं धन जैसे तत्वों का बोलबाला भी है। खिलाड़ियों को जहां सुविधाएं प्राप्त नहीं होती, कभी खाने की तो कभी खेल सामान की, वहीं खेल संघों की व्यवस्था उन्हें ले डूबती है, तथा वे निराश होकर खेलों से मुंह मोड़ लेते हैं।

आजादी के 55 साल बाद भी खेलों तथा खेल संघों के लिए सरकार के पास कोई स्पष्ट खेल नीति नहीं है। एक ऐसी खेल नीति जो खेल एवं खिलाड़ी के उत्थान के लिए बेहद जरूरी है, का होना अत्यन्त आवश्यक है। रांची के त्यूर गुड़िया गांव के गोपाल भेंगड़ा, जिन्होंने 1978 के अर्जेंटीना विश्वकप में भारत के लिए हॉकी खेली थी, आज अपना जीवन चलाने के लिए 50 रुपये में 100 पत्थर तोड़ने को विवश है। गोपाल जैसे सैकड़ों अन्य खिलाड़ी जो कभी भारत के गौरव प्रतीक रहे हैं आज आर्थिक तंगी में जीने को विवश हैं। इन परिस्थिति में कौन मां-बाप अपने बच्चों को खेलों में भेजना चाहेगा?

सुझाव

भारतीय खिलाड़ी अभी विश्व पटल पर सौ साल पीछे हैं। उन्हें वह स्तर प्राप्त करने के लिए बहुत मेहनत की आवश्यकता है। जरूरत इस बात की है कि खेलों के विकास के लिए एक दीर्घकालिक नीति का निर्माण किया जाए। चीन जैसा देश जो आज से 20 साल पहले खेलों की दुनिया में कहीं टिकता नहीं था, आज खेलों की महाशक्ति बनने के कगार पर है। उसने एक दीर्घकालिक सधी हुई योजना के तहत खेलों पर ध्यान दिया। छोटी उम्र के बच्चों का चयन उनकी शारीरिक बनावट, दम-खम तथा रूचियों के आधार पर किया और उन्हें पूर्वी जर्मनी से बुलाए गए खेल विशेषज्ञों के निर्देशन में प्रशिक्षण दिया, भरपूर सुविधाएं उपलब्ध कराई, उनमें जीतने का जज्बा पैदा किया। परिणाम सबके सामने है।

जर्मनी जैसे देशों में 5 साल के बच्चों की

बायोप्सी करके उनकी क्षमता ज्ञात की जाती है। उसके बाद उन्हें उनकी क्षमता के अनुसार विभिन्न खेलों में डाला जाता है। आज भारत को भी आवश्यकता है कि वह खेलों में उच्च तकनीक अपनाए तथा वैज्ञानिक प्रशिक्षण दे। बिलियर्ड्स खिलाड़ी माइकेल फरेरा कहते हैं, 'हमें भी विदेशी विशेषज्ञों को बुलाकर उनकी महारत का लाभ उठाना चाहिए।' अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत का नाम रोशन करने वाले अधिकांश खिलाड़ी विदेशों में जाकर प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। पेस-भूपति की जोड़ी अमेरिकी विशेषज्ञों से सहायता लेती है। शतरंज खिलाड़ी विश्वनाथन आनन्द स्पेन में रहकर अभ्यास करते हैं। बकौल रमेश कृष्णन यह शर्म की बात है कि खिलाड़ी विदेश में जाकर प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं।

आज सरकार द्वारा एक स्पष्ट खेल नीति बनाने की आवश्यकता है जिसमें खिलाड़ियों के सुरक्षित भविष्य की गारंटी हो तथा उन्हें सभी सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएं। हमारे अधिकांश खिलाड़ी अभी भी दाल-भात-घी खाकर ओलम्पिक स्वर्ण जीतना चाहते हैं। पश्चिमी देशों में अलग-अलग खेल के खिलाड़ियों को अलग-अलग कैलोरी का भोजन उपलब्ध कराया जाता है, तथा पीने के लिए स्पोर्ट्स पेय दिए जाते हैं जो शरीर में जैविक तत्वों की भरपाई करते हैं। हमारी सरकार का दायित्व है कि खिलाड़ियों को सभी सुविधाएं दें। इसके बावजूद खिलाड़ी पदक प्राप्त नहीं करते या अन्तर्राष्ट्रीय स्तर को नहीं छू पाते तो उन्हें बड़ी प्रतियोगिताओं में भेजने के बारे में एक बार पुन: सोचा जाना चाहिए। 2000 के सिडनी ओलम्पिक में हमारे अधिकांश एथलीट उतना समय भी नहीं निकाल पाए जितना वे घरेलू मैदानों पर निकाला करते थे। अत: खिलाड़ियों को अपनी क्षमता भी बढ़ानी होगी।

खेल संघों में व्याप्त भ्रष्टाचार, पद-लोलुपता तथा भाई-भतीजावाद को समाप्त करना पड़ेगा। खिलाड़ी की क्षमताएं एवं प्रतिभा को महत्व देना पड़ेगा, न कि उसकी पहुंच एवं धन को। उन्हें अपनी कार्यशैली में परिवर्तन लाना होगा। तभी प्रतिभाएं सामने आएंगी।

ओलम्पिक के जन्मदाता डी. कुबर्टिन का कहना था कि 'ओलम्पिक में जीतना नहीं, भाग लेना बड़ी बात है।' भारतीय खिलाड़ी हमेशा इसी आदर्श वाक्य का सहारा लेकर अपनी कमियों पर परदा डालते रहे हैं। उन्हें यह भी याद रखना चाहिए कि ओलम्पिक का नारा है—'अधिक ऊंचा, अधिक तेज तथा अधिक शक्तिशाली' जो इसका अनुसरण करते हैं, वहीं पदक जीतते हैं। ❑

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं।)

(पृष्ठ 33 का शेष)

एक और खूबी यह है कि इसे बिना किसी परिरक्षक के लंबे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

भारत और चीन के प्राचीन ग्रंथों में मखाने के औषधीय गुणों का भी जिक्र किया गया है। इसका उपयोग सांस की बीमारियों, पाचन एवं उत्सर्जन तंत्र की गड़बड़ियों, गुर्दे की बीमारियों और प्रजनन तंत्र संबंधी अनेक विकारों में कारगर दवा के रूप में भी किया जाता है। हाजमें संबंधी बीमारियों में यह एक कारगर औषधि है। वसा की मात्रा कम होने के कारण इसे बीमारी के कारण कमजोरी का शिकार हुए लोगों और विटामिन-बी की कमी के कारण बेरी-बेरी रोग से ग्रस्त लोगों के लिए बड़ा फायदेमंद बताया गया है। हालांकि मखाना बड़ा स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ है और पौष्टकता से भरपूर है, लेकिन अभी देश या विदेश के प्रमुख बाजारों में इसके गुणों के बारे में पर्याप्त जानकारी की कमी है। मखाना बड़ा हल्का होता है। इसका आयतन/वजन अनुपात काफी अधिक होता है जिस कारण इसके परिवहन में अधिक लागत आती है। (8-10 किलोग्राम मखाने को रखने के लिए 100 किलोग्राम वाले बोरे की आवश्यकता पड़ती है।) मखाने की खेती श्रमप्रधान है और उत्पादन प्रक्रिया भी बड़ी जटिल है।

मखाने की खेती के साथ-साथ मगूर (क्लेरियस) (मरल चन्ना अन्टारस) और कोई (एनाबस टेस्ट्रोडीनियस) जैसी हवा से सांस लेने वाली मछलियां पालकर मुनाफा बढ़ाया जा सकता है।

मखाने की खेती के संरक्षण में सरकार को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी। इसकी खेती करने वालों को ऋणों में रियायत, फसल बीमा और कीटनाशक की सप्लाई जैसे प्रोत्साहन देकर उत्पादन बढ़ाने में मदद दी जा सकती है। बिहार में मखाने की खेती और उत्पादन को उद्योग का दर्जा देने की सरकारी घोषणा की, जो एक शुभ संकेत हैं। इससे प्रेरित होकर राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक ने मखाने की खेती को भी अपने ऋण कार्यक्रम में शामिल कर लिया है। पूर्वी भारत के उड़ीसा, पश्चिम बंगाल तथा अन्य राज्य, जहां पानी का जमीन पर जमा हो जाना एक बड़ी समस्या है, मखाने की खेती को इसी तरह का दर्जा दिया जाना चाहिए क्योंकि इस फसल में ठहरे पानी में जीवित रहने की अच्छी क्षमता है। ❑

(श्री जी.पी. रेड्डी जल प्रौद्योगिकी केन्द्र, पूर्वी क्षेत्र, भुवनेश्वर में वरिष्ठ वैज्ञानिक हैं।)

जहां चाह, वहां राह

महिलाओं को घर बैठे वैकल्पिक रोजगार

○ देवेन्द्र उपाध्याय

हल्द्वानी नैनीताल में करीब दो दर्जन मित्रों के साथ प्रो. (डा.) एच.सी. जोशी ने ग्रामीण एवं कृषि विकास समिति का गठन किया। पंतनगर विश्वविद्यालय में कई दशक तक पशु स्वास्थ्य वैज्ञानिक के रूप में जुड़े प्रो. जोशी के लिए कृषकों की समस्याएं अनजानी नहीं थी। वह अनेक समस्याओं को जानते-समझते हुए उनका निदान उसी दायरे में करते थे।

पंतनगर विश्वविद्यालय से सेवानिवृत्त होने के बाद प्रो. जोशी ने किसानों की खेती तथा पशुपालन से संबद्ध समस्याओं को हल करने का बीड़ा उठाया। हल्द्वानी में समिति की स्थापना की गई। किसानों के लिए 'हैल्प लाइन' शुरू कर दी और तीन वर्ष तक हल्द्वानी विकासखंड के गांवों में तकनीकी मार्गदर्शन दिया। बिन्दुखत्ता क्षेत्र में किसानों के बीच प्रदर्शन किया और उन्हें प्रशिक्षित किया। कृषि, बागवानी और पशुपालन पर ही समिति ने ध्यान केंद्रित रखा।

समिति के इस कार्य का व्यापक प्रभाव पड़ा। लघु एवं सीमांत किसानों को भरपूर मार्गदर्शन मिलने लगा तो समिति की ख्याति आस-पास के क्षेत्रों तक पहुंची। वर्ष 1998 में उत्तर प्रदेश कृषि विविधीकरण परियोजना शुरू हुई तो समिति को रणनीतिक अनुसंधान एवं प्रसार कार्यक्रम (एसआरईपी) तैयार करने का दायित्व सौंपा गया जिसे समिति ने सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थानों के सहयोग से तैयार किया। इसके बाद जून, 1999 में इस परियोजना की जिम्मेदारी समिति को सौंप दी गई। विश्व बैंक की वित्तीय सहायता से चलने वाली इस परियोजना के परिणाम काफी सकारात्मक रहे।

तीन वर्ष की अवधि में समिति ने कोटाबाग, हल्द्वानी और रामनगर विकास खंड के करीब 200 गांवों में किसानों में जागरूकता पैदा करने, धान एवं गेहूं से हटकर अन्य फसलों के उत्पादन से संबंधित नई तकनीकी की जानकारी देने तथा प्रदर्शन करने के दीर्घकालीन परिणाम सामने आने लगे।

प्रो. जोशी ने बताया कि आज उनके साथ पशु स्वास्थ्य, बागवानी, कृषि, जैव प्रौद्योगिकी, वानिकी संरक्षण, आर्गनिक फार्मिंग, लघु उद्योग, पौधारोपण, कृषि वानिकी से जुड़े विशेषज्ञों की टीम है, जो अपने अनुभवों का लाभ किसानों को देने के लिए हर समय तत्पर रहती है।

इस समय तीनों विकास खंडों में 350 से अधिक स्व-सहायता समूह गठित किए जा चुके हैं। इनमें तीन तरह के समूह हैं—एक केवल महिलाओं का, दूसरा केवल पुरुषों का और तीसरा महिलाओं-पुरुषों का संयुक्त। गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों के 15 समूह बनाए गए हैं। अब तक हर विकास खंड में इन समूहों ने 5-5 लाख रुपये की बचत का रिकार्ड स्थापित किया है।

शौलापार, कमलुआ गांजा, खेड़ा, भवानीपुर, हरिपुर, गंगापुर, कबडवाल, डूंगरपुर, चोरपानी, कानिया एवं खेड़ा आदि गांवों में फल एवं सब्जी संरक्षण तथा अचार, जैम, जैली, कैचप और स्क्वैश बनाने का काम महिलाएं बड़े पैमाने पर करने लगी हैं। इनके उत्पादित सामान की खपत गांवों में ही आसानी से हो जाती है। इसके अलावा क्षेत्रीय मेलों में भी सामान बेचने की व्यवस्था की जाती है। रामनगर विकास खंड के कानिया, चोरपानी और भवानीपुर में फल एवं सब्जी संरक्षण के साथ ही मसाला बनाने का काम भी खूब हो रहा है। इनके उत्पाद स्थानीय रामनगर मंडी में बिक जाते हैं।

कोटाबाग विकास खंड अर्द्धपहाड़ी जलवायु वाला क्षेत्र है जिसमें पहाड़ी और तराई दोनों क्षेत्र आते हैं। प्रो. जोशी ने बताया कि यहां अदरक, नीबू, मिर्च, टमाटर, लहसुन, आंवला, आम, कटहल और पपीता भरपूर होता है। अब इस क्षेत्र के दर्जन भर गांवों में अचार, चटनी, मुरब्बा, स्क्वैश बनाने का काम महिलाएं कर रही हैं। कच्चा माल वहीं उपलब्ध है और तैयार माल आसानी से बिक जाता है। शैलासिया, छियाडाली (पांडेगांव), पतलिया, भटलानी, रामदत्त गांव, गिनती गांव और आंवलाकोट में यह लघु उद्योग खूब फल-फूल रहा है। पतलिया गांव में मसाला पीसने की चक्की खरीदी गई है। कोटाबाग क्षेत्र में उड़द और अरबी की भी खूब पैदावार होती है। महिला स्व-सहायता समूहों ने उड़द, अरबी की बड़ी बनाने का काम किया और आज यहां की बड़ी 60 से लेकर 100 रुपये किलो तक के भाव बिक रही है।

इन समूहों को वैकल्पिक रोजगार के अवसर प्रदान करने की महत्वाकांक्षी योजना शुरू की गई है। इसके लिए बैंकों से ऋण दिलवाए जाने की भी व्यवस्था है। प्रो. जोशी ने बताया कि अधिकतम 25 हजार रुपये का ऋण दिलाया गया है। सब्जी उत्पादन, बागवानी, पशुपालन और जैविक खेती के लिए अधिकतर मामलों में ऋण दिलाए गए हैं। अभी तक 35 समूहों को कैश क्रेडिट लिमिट (सीसीसी) दिलाया जा चुका है जो मसाला उद्योग, चारा काटने की मशीन आदि से संबंधित है।

हल्द्वानी के गोलापार क्षेत्र और रामनगर के निकटवर्ती गांवों तथा कोटाबाग क्षेत्र में समिति के प्रयासों का परिणाम यह निकला है कि दूसरे आस-पास के क्षेत्रों में भी ऐसी योजनाओं का लाभ उठाने की इच्छाशक्ति महिलाओं में जाग उठी है।

उत्तरांचल कृषि विविधीकरण योजना के अंतर्गत समिति ने अब तक जो कार्य किया है, उससे उन्हें संतोष है। समिति के कार्यों को देखकर विश्व बैंक ने उसे नवंबर, 2000 में प्रसार कार्यक्रम के निजीकरण का दायित्व सौंपा है जो कोटाबाग विकास खंड के लिए है। इसके अंतर्गत किसान की हर जरूरत की पूर्ति उसके घर पर ही की जा रही है। यह सुनिश्चित किया जाता है कि किसान को समय पर कच्चा माल और संसाधन उपलब्ध हो। समिति का काम जरूरत-आधारित गतिविधियां चलाना है। इस कार्य का प्रभाव प्रोजेक्ट एरिया और उसके बाहर भी पड़ रहा है। यह भी ध्यान रखा जाता है कि खर्च किसान की हैसियत से अधिक न हो।

प्रसार कार्यक्रम के निजीकरण के प्रभाव के बारे में प्रो. जोशी ने बताया कि मृदा परीक्षण के 18 कार्यक्रम आयोजित किए गए। इससे प्रभावित होकर 120 किसानों ने इस तकनीक को अपनाया। जैविक खेती के 114 कार्यक्रम किए गए और 440 किसान इसे अपना चुके हैं। कोटाबाग क्षेत्र में अदरक मुख्य फसल है। उसमें सड़न-गलन की बीमारी 80 प्रतिशत पौधों में पाई गई। जैविक खेती से इसे काफी हद तक नियंत्रित करने में सफलता मिली है। यही नहीं इससे उर्वरकों और कीटनाशक दवाइयों के खर्च में भी कमी आई है। एकीकृत पौध प्रबंध तकनीक के प्रदर्शन से प्रभावित होकर 86 किसान इसे अपना चुके हैं। जैविक खेती को स्यात गांव के नन्दन सिंह ने अपनाया और वर्मी कम्पोस्ट का मिर्च, टमाटर और अदरक की खेती में उसे खूब फायदा मिला। आज नन्दन सिंह केंचुए भी बेच रहा है।

समिति ने अब कोटाबाग और भीमताल प्रखंड में 'मिल्क विद सिल्क' का नारा दिया है। शहतूत के पेड़ लगाने का सघन कार्यक्रम शुरू किया गया है। करीब 20 हजार शहतूत के पेड़ लगाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। इसके लिए 12 समूह बनाए गए हैं जो 32 गांवों से हैं। दूसरे वर्ष ही शहतूत की पत्तियों का रेशम के लिए उपयोग होने लगता है और इनसे पशुओं को भरपूर चारा भी मिलता है। ❑

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं।)

इस स्तंभ में पिछले अंक में आप श्री 'जंगली' द्वारा मिश्रित वन लगाए जाने की कथा पढ़ चुके हैं। इस बीच लेखक को अपने कुछ प्रश्नों के उत्तर उनसे प्राप्त हुए जिनके आधार पर यह अतिरिक्त सूचना आपको देना उचित प्रतीत हुआ है:-

'जंगली' ने किया 'जंगल में मंगल'

कोटमल्ला, रुद्रप्रयाग, उत्तरांचल के जगत सिंह चौधरी 'जंगली' ने अपनी बंजर भूमि में मिश्रित बन लगाकर अपने गांव की औरतों की कठोर जिंदगी में खुशियां भर दी हैं। उन्हें यह विचार क्यों और कैसे आया, सुनिए उन्हीं के शब्दो में।

''मुझे यह देखकर बहुत पीड़ा होती थी कि पहाड़ की औरतों को घास और ईंधन लाने के लिए सुबह से शाम तक जंगलों में भटकना पड़ता है। इस प्रयास में कुछ औरतों के हाथ पांव टूट जाते हैं और कुछ चट्टानों से गिर कर या नदी में बहकर अपने प्राण गंवा देती हैं।''

मिश्रित-वन एवं वन-खेती का एक दृश्य

''लगभग तीस वर्ष पहले जब मैं सीमा सुरक्षा बल में था मैंने अपनी बंजर भूमि में चारे और ईंधन के काम आने वाले वृक्ष लगाने की शुरुआत की। इस कार्य में मैंने बांज को प्राथमिकता दी। जब कभी वर्षा ऋतु या जाड़ो में मैं छुट्टी पर घर आता इस काम को आगे बढ़ाता। मेरी पत्नी और घर के अन्य सदस्य भी इस काम में पूरा सहयोग करते। 1980 में सेवानिवृत्ति के बाद मैं इस काम में पूरी तरह जुट गया। प्रारंभ में लोग मेरे कार्य को संशय और संदेह से देखते थे। लेकिन जब वृक्ष बड़े हो गए और वहां से मेरे परिवार और गांव वालों को चारा-ईंधन मिलने लगा तो सभी मुझे धन्यवाद देने लगे।

मेरी देखा-देखी लोगों ने अपने खेतों की मेड़ों पर और बंजर धरती पर मिश्रित वन लगाने शुरू किए। इसका नतीजा यह हुआ कि आज गांव की ईंधन और चारे की जरूरत गांव से ही पूरी हो जाती हैं। गांव की औरतों को घास और लकड़ी की तलाश में जंगलों में भटकना नहीं पड़ता। गांव के नीचे, स्रोतों का पानी बढ़ गया है, पानी के नए स्रोत पैदा हो गए हैं और सर्वत्र हरियाली नजर आती है। ❑

फ्लूरोसिस—एक गंभीर स्वास्थ्य समस्या

○ आशीष कुमार यादव

फ्लूरोसिस एक लाइलाज बीमारी है जो अत्यधिक फ्लोराइडयुक्त जल एवं खाद्य पदार्थों के सेवन से होती है। भारत में फ्लूरोसिस की समस्या मुख्यत: ग्रामीण क्षेत्रों में है। इसका मुख्य कारण वहां एकीकृत पेयजल प्रदाय व्यवस्था का न होना है। एक अनुमान के अनुसार भारत में 56.2 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या ही ग्रामीण पेयजल योजना का लाभ ले रही है। शेष लोग पेयजल के लिए विभिन्न जल-स्त्रोतों पर निर्भर हैं। फ्लूरोसिस के अन्य प्रमुख कारण हैं ग्रामीणों की अशिक्षा एवं आर्थिक पिछड़ापन । एक सर्वेक्षण से पता चला है कि भारत में 620 लाख लोग इस बीमारी से प्रभावित हैं। 1930 में यह पहली बार आंध्र प्रदेश में देखी गई। पेयजल के रूप में सीधे भू-जल का प्रयोग फ्लूरोसिस को बढ़ावा देता है। फ्लूरोसिस से प्रभावित ग्रामों के पेयजल में फ्लोराइड की मात्रा 48 मिलीग्राम प्रति लीटर तक पाई गई जो विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा निर्धारित अधिकतम सह्य क्षमता (1 मिलीग्राम प्रति लीटर) से बहुत अधिक है।

स्त्रोत

मनुष्य में फ्लोराइड कई तरह से प्रवेश करता है। भू-जल इसका प्रमुख स्त्रोत है। इसके अतिरिक्त खाद्य पदार्थ, दवाईयां, दंत मंजन, सौंदर्य-प्रसाधन, विभिन्न औद्योगिक इकाईयों से निकले अवशिष्ट पदार्थ आदि में भी फ्लोराइड की पर्याप्त मात्रा पाई जाती है। भू-जल में फ्लोराइड किस तरह आता है, यह शोध का विषय है। यह विभिन्न प्रकार की चट्टानों एवं खनिजों में संयुक्त अवस्था में मिलता है, जैसे—टोपाज, रॉक, फास्फेट, ऐपेटाइट, क्रायोलाइट, माईका, आदि। जब इन चट्टानों एवं खनिजों से युक्त भूमि से वर्षा एवं अन्य जल रिसकर भूमि में जाता है तो यह अपने साथ फ्लोराइड को भी घोल लेता है। विभिन्न खाद्य पदार्थों, जैसे—अनाज, सब्जी, फल, मसाले, मांस, चाय, तम्बाकू तथा सुपारी में भी फ्लोराइड की अत्यधिक मात्रा पाई जाती है। इनके सेवन से फ्लोराइड मानव शरीर में प्रवेश करता है। 1970 से 1980 के बीच हुए अध्ययनों में खाद्य पदार्थों में पाई गई फ्लोराइड की मात्रा तालिका-1 में दी गई है। अध्ययन यह भी बताता है कि भारत में बिकने वाले सारे दंतमंजन अत्यधिक फ्लोराइडयुक्त हैं। विभिन्न औद्योगिक प्रक्रियाएं भी फ्लोराइड प्रदूषण को बढ़ावा देती हैं, जैसे—कांच उद्योग, चीनी-मिट्टी उद्योग, उर्वरक उद्योग, रसायन उद्योग, फार्मास्यूटिकल उद्योग (दवाई), आदि।

लक्षण एवं प्रभाव

फ्लोराइडयुक्त पेयजल, खाद्य पदार्थों एवं अन्य पदार्थों के लगातार सेवन से फ्लूरोसिस नामक बीमारी के लक्षण उभरते हैं। यह अवधि 6 मास से लेकर कई वर्ष तक हो सकती है। फ्लोराइड की तुलना दोधारी तलवार से की जाती है क्योंकि फ्लोरीन मानव शरीर के लिए आवश्यक तत्व होने के साथ ही अधिक मात्रा में घातक प्रभाव रखने वाला तत्व है। मानव शरीर में पाए जाने वाले फ्लोराइड का 96 प्रतिशत भाग दांतों एवं हड्डियों में मौजूद होता है। फ्लोराइड की अल्प मात्रा हड्डियों को मजबूत बनाने एवं दांतों की चमकीली परत बनाने में मदद करती है। अधिक मात्रा में दांतों व मसूड़ों में सड़न एवं हड्डियों में असमानता पैदा करती है। सामान्यत: फ्लूरोसिस के तीन रूप देखने में आते हैं—दंत फ्लूरोसिस, कंकालीय फ्लूरोसिस एवं गैर-कंकालीय फ्लूरोसिस। उपर्युक्त विकार फ्लोराइड की मात्रा एवं सेवन अवधि पर निर्भर करते हैं। फ्लूरोसिस पर कम अनुसंधान होने के कारण इस रोग के निर्धारण में कई बार चिकित्सक भी भ्रमित हो जाते हैं। वे इसकी तुलना आथ्राइटिस (जोड़ों में सूजन), स्पांडीलाइटिस या जोड़ों के दर्द से कर देते हैं। फ्लूरोसिस की पहचान के कुछ लक्षण निम्न हैं :

1. रोगी के सामने के दांतों पर पीले, भूरे या लाल रंग के धब्बे का होना। दांतों की यह बदरंगता अन्य कारणों के अलावा फ्लूरोसिस की वजह से हो सकती है।
2. अत्यधिक प्यास का लगना एवं अधिक पेशाब का आना फ्लोरोसिस का लक्षण हो सकता है।
3. हड्डियों में टेढ़ापन अन्य बीमारी के अलावा फ्लूरोसिस का लक्षण हो सकता है।
4. मिचली, उल्टी, पेट का फूलना एवं गैस का बनना, पेट में दर्द रहना, गैर अल्सरी अपच आदि फ्लूरोसिस के लक्षण हो सकते हैं।
5. मांसपेशियों की कमजोरी एवं शक्तिहीनता आदि भी फ्लूरोसिस के लक्षण हो सकते हैं।
6. खून एवं मूत्र में फ्लोराइड की अत्यधिक मात्रा भी फ्लूरोसिस का लक्षण हो सकता है।
7. जोड़ों में ऐसा दर्द जिसमें द्रव इन स्थानों पर संचित नहीं होता। यह अन्य कारणों के अलावा फ्लूरोसिस का भी लक्षण हो सकता है।
8. रोगी के खून, सीरम, मूत्र में फ्लोराइड की बढ़ी हुई सान्द्रता भी फ्लूरोसिस का लक्षण हो सकता है।

तालिका-1

विभिन्न खाद्य पदार्थों में फ्लोराइड की सान्द्रता

खाद्य पदार्थ	फ्लोराइड सान्द्रता पी.पी.एम. (भाग प्रति 10 लाख)
अनाज	
गेहूं	4.6
चावल	5.9
बाजरा	2.8
मक्का	5.6
दालें एवं फलियां	
चना	21.2
सोयाबीन	4.0
पत्तेदार सब्जियां	
पत्ता गोभी	3.3
पालक	4.1
चौलाई	1.7
पोदीना	4.8
अन्य सब्जियां	
खीरा	4.1
टमाटर	3.4
भिंडी	4.0
बैंगन	2.4
प्याज	3.7
आलू	2.9
गाजर	4.1
फल	
अमरूद	5.1
आम	3.7
सेब	5.7
अंगूर	1.7
केला	2.9
पेय पदार्थ	
चाय	39.8
नारियल पानी	0.6
मसाले	
जीरा	1.8
धनिया	2.3
हल्दी	3.6
अदरक	2.0
लहसुन	5.0

स्रोत : राजीव गांधी राष्ट्रीय पेयजल मिशन, नई दिल्ली फरवरी, 1999

9. गर्भपात एवं मृत शिशु जन्म की घटना का बार-बार होना भी अन्य कारणों के अलावा फ्लूरोसिस का कारण हो सकता है। ऐसा फ्लोराइड के कारण रक्तवाहिनियों के कठोर होने से भ्रूण को रक्त आपूर्ति में कमी के कारण होता है।
10. पुरुष में प्रजनन क्षमता में ह्रास, वीर्य में शुक्राणुओं का अभाव, शुक्राणुओं में असमानता, पुरुष हार्मोन की कमी आदि लक्षण भी अन्य कारणों के अतिरिक्त फ्लूरोसिस के कारण देखने में आ सकते हैं।
11. फ्लूरोसिस के कारण रक्त के हीमोग्लोबिन स्तर में कमी आ जाती है जिससे थकान की शिकायत रोगी में देखने में आती है।

फ्लूरोसिस मानवीय स्वास्थ्य को कई तरह से प्रभावित करता है। जहां एक ओर फ्लूरोसिस पीड़ित के दांतों में काले धब्बे व सड़न पैदा करता है वहीं कंकाली फ्लूरोसिस से हड्डियों में फ्लोराइड के संचय के कारण टेढ़ापन आ जाता है जिससे पीड़ित व्यक्ति में स्थायी विकलांगता पैदा हो जाती है। कंकालीय फ्लूरोसिस के कारण पीड़ित के पैर घुटनों पर से मुड़ जाते हैं जिससे पीड़ित चलने-फिरने में असमर्थ हो जाता है। इस व्याधि को 'नौकनी सिन्ड्रोम' कहा जाता है। कंकाली फ्लूरोसिस सबसे ज्यादा जोड़ों, जैसे—घुटने, कंधे, गर्दन, कोहनी, पीठ, पैरों एवं हाथों के जोड़ों की कार्यक्षमता को प्रभावित करता है एवं धीरे-धीरे ये कार्य करना बंद कर देते हैं जिससे पीड़ित चलने-फिरने में असमर्थ हो जाता है। गैर कंकाली फ्लूरोसिस पीड़ित रोगी में अपच, पेट का फूलना, मितली, पेट दर्द, कब्ज आदि व्याधि सामान्यत: देखने को मिलती है। एक अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि फ्लूरोसिस उत्परिवर्तन एवं कैंसर को भी बढ़ावा देता है। अमेरिका में फ्लोराइड प्रदूषण के कारण होने वाले कैंसर के कुछ उदाहरण मिले हैं।

उपाय

फ्लूरोसिस एक लाइलाज बीमारी है, इसलिए बचाव ही इसका इलाज है। मनुष्य में फ्लोराइड के प्रवेश का मुख्य स्रोत है पेयजल। फ्लोराइडयुक्त जल सामान्य जल की भांति ही रंगहीन एवं वैसे ही स्वाद वाला होता है जिससे आम जनता इसका अनजाने में प्रयोग करती रहती है। ग्रामीण क्षेत्रों में जागरूकता की कमी से यह समस्या और गंभीर हो जाती है क्योंकि ग्रामीण जनता पेयजल के रूप में भूमिगत जल का सीधा प्रयोग करती है। फ्लूरोसिस से निम्नलिखित उपाय अपनाकर बचा जा सकता है :-

1. फ्लोराइडयुक्त खाद्य पदार्थों का कम से कम सेवन किया जाए।
2. भोजन में ऐसे खाद्य पदार्थों का समावेश किया जाए जिनमें कैल्शियम एवं विटामिन-सी की मात्रा ज्यादा हो। ये पदार्थ फ्लूरोसिस होने से रोकते हैं।
3. पेयजल के स्रोतों में फ्लूराइड की मात्रा का मापन समय-समय पर किया जाए। ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल के लिए एकीकृत पेयजल प्रदाय की व्यवस्था से भी फ्लूरोसिस पर नियंत्रण पाया जा सकता है।
4. फ्लूरोसिस प्रभावी क्षेत्रों में वर्षा जल का संचय कर इसका प्रयोग पेयजल के रूप में करके भी फ्लूरोसिस से बचा जा सकता है।
5. 7 वर्ष से छोटे बच्चों को फ्लोराइडयुक्त दंतमंजन आदि का उपयोग नहीं करने देना चाहिए।
6. फ्लूरोसिस प्रभावित क्षेत्रों में भू-जल से फ्लोराइड की अतिरिक्त मात्रा हटाने के पश्चात ही इसका उपयोग किया जाना चाहिए। इस हेतु फिटकरी, चूना, ब्लीचिंग पाउडर आदि का प्रयोग ग्रामीण स्तर पर किया जा सकता है।
7. दंत-फ्लूरोसिस की पहचान हेतु व्यापक सर्वेक्षण कराए जाने चाहिए ताकि फ्लूरोसिस की पहचान शुरुआती अवस्था में ही की जा सके एवं उस पर नियंत्रण के उपाय किए जा सकें। ❑

(लेखक हिसार, हरियाणा के गुरु जम्भेश्वर विश्वविद्यालय के पर्यावरण विज्ञान एवं अभियांत्रिकी विभाग के छात्र हैं।)

नए प्रकाशन

जनसंख्या नियंत्रण तथा पर्यावरण-संरक्षण की सही दिशा

पुस्तक: **जनसंख्या-विस्फोट और पर्यावरण-प्रदूषण**; लेखक: **डॉ. बी.आर. धर्मेन्द्र**; प्रकाशक: **अनिल प्रकाशन, न्यू मार्केट, नई सड़क, दिल्ली-6**; मूल्य: **100 रुपये**।

जनसंख्या की विस्फोटक वृद्धि ने पर्यावरण-प्रदूषण की समस्या को न केवल बढ़ा दिया है, वरन् काफी कुछ जटिल भी बना दिया है। इसके बावजूद यह कहना तर्कसंगत और न्यायसंगत नहीं कि बहुआयामी प्रदूषण की समस्या का कारण जनसंख्या की बेलगाम वृद्धि है। आलोच्य पुस्तक में इस तथ्य का विश्लेषण पर्याप्त सूझ-बूझ और गंभीरता से करते हुए लेखक ने जो तर्क तथा सुझाव दिए हैं उनसे असहमत नहीं हुआ जा सकता। 'हम दो-हमारा एक' के सिद्धांत पर लेखक ने जोर दिया है।

कृतिकार डॉ. बी.आर. धर्मेन्द्र ने पर्यावरण के संदर्भ में भारतीय जीवन-दृष्टि के विशिष्ट महत्व को भी मानसिक ईमानदारी से प्रस्तुत किया है। लेखक का स्पष्ट मत है कि 'आज पश्चिमी जगत की विष भरी हवाएं हमें ताजगी प्रदाता-सी लगती हैं। इसका सर्वप्रमुख कारण यह है कि हम अपनी सभ्यता का डेढ़ सौ वर्षों से मैकाले की छाया में निरंतर विनाश करते आ रहे हैं।' (पृ. 56)।

लेखक का यह कथन विचारणीय है कि 'वैज्ञानिक सोच और तौर-तरीके अपनी जगह सही हैं। गलत यह है कि उस सोच और उन तौर-तरीकों का उपयोग हम अपनी दृष्टि से नहीं कर पाए। मूलभूत वैज्ञानिक दृष्टि को भी समग्रत: अपना नहीं सके।' (पृ. 16)। जनसंख्या और पर्यावरण के अन्त:संबंध की चर्चा करते हुए लेखक कहता है—'नारी के माता-रूप के प्रति पूजा का भाव हृदय में धारण करते हुए पुरुष आगे बढ़ सकता है। यह एक ऐसा सत्य है जिसे नकारा नहीं जा सकता।' (पृ. 26)।

इस प्रकार लेखक ने वर्तमान सामाजिक दृश्य-दिशा को समझाने का जो प्रयास किया है, जो श्लाघनीय है। जनसंख्या-विस्फोट पर लेखक ने गंभीरता से और उदाहरण सहित प्रहार किए हैं तथा वोट की क्षुद्र एवं निहित-स्वार्थ राजनीति को इसका प्रधान कारण बताया है जो सही ही है। महाकवि कालिदास का उदाहरण देकर लेखक ने समस्या के युक्तियुक्त समाधान का मार्ग विवेक-जागरण और ज्ञान के दीपक का निरंतर जलते रहना बताया है। इस प्रकार दैनिक निजी-जीवन में स्वच्छता, स्पष्टता, कार्य-निष्ठा और श्रद्धा-सहित समर्पण की भावना का अनुराग अपने पाठकों में जगाने का दायित्व लेखक ने ईमानदारी से पूरा किया है।

पुस्तक में कुल बारह पाठ दिए गए हैं और सर्वथा मौलिक। यह चिंतन भी प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि पर्यावरण को शुद्ध-स्वच्छ बनाए रखने में स्पष्ट तथा सुंदर हस्तलेखन का निश्चित योगदान होता है। इस तरह पर्यावरण की सुरक्षा एवं संरक्षण के लिए हस्तलेखन के योगदान का चिंतन पहली बार किसी कृतिकार ने अपनी कृति में प्रस्तुत किया है।

लेखक ने नैतिक धरातल पर समस्या का समाधान खोजते हुए दो टूक शब्दों में कहा है कि 'समाजविरोधी, राष्ट्रविरोधी और संपूर्ण मानवता विरोधी कारगुजारियां कुछ ही लोग करते हैं, लेकिन उसकी हानियां व्यापक जन-समाज को दीर्घकाल तक उठानी पड़ती हैं। और उन अवांछित हानियों के आलोक में व्यापक जन-समाज भी प्रतिक्रियात्मक रूप में वैसी ही हानियों को जन्म देने लगता है अथवा सुधारात्मक उपायों के प्रति लापरवाह हो जाता है। दोनों ही स्थितियां चिंताजनक हैं और घोर अनैतिक हैं। अपराधी से प्रेरणा की प्रवृत्ति अधिक खतरनाक है, क्योंकि ऐसा होने पर अपराध की रोकथाम के उपाय ही बेमानी हो जाते हैं।' (पृ. 47)

इस प्रकार लेखक ने पाठकीय प्रतिमानों को समयोचित स्वर देते हुए जितना कुछ कहा है, वह बार-बार अवलोकनीय है। निस्संदेह प्रस्तुत कृति रोचक, मनोरंजक होने के साथ मननीय और संग्रहणीय है तथा विचारों को आवश्यक उत्तेजना प्रदान करने में सक्षम और समर्थ है।

—रामदास शर्मा

(पृष्ठ 23 का शेष)

- विश्व व्यापार संगठन के प्रति वचनबद्धता के चलते लघु उद्योग क्षेत्र को कड़ी चुनौती का सामना करना पड़ सकता है तथा उदारीकरण के कारण भी राज्य वित्तीय निगमों को राज्य औद्योगिक विकास निगमों, वाणिज्यिक बैंकों जैसे संगठनों से कड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ सकता है। इसके लिए राज्य वित्तीय निगमों को गैर-निष्पादनीय आस्तियों पर नियंत्रण लगाना चाहिए तथा अच्छा पूंजीपर्याप्तता स्तर प्राप्त करने के लिए विशेष ध्यान देते हुए अपने कार्य निष्पादन में सुधार लाना चाहिए।

वर्तमान समय में इन निगमों के सामने अनेकों चुनौतियां हैं। इन निगमों को अपनी कार्यप्रणाली तथा परिचालन में आर्थिक उदारीकरण के अनुरूप परिवर्तन लाना होगा। तभी राज्य वित्तीय निगम अपनी स्थापना के उन उद्देश्यों को प्राप्त कर सकेंगे जिनकी पूर्ति के लिए इन राज्य वित्तीय निगमों की स्थापना की गई थी। ❑

(लेखक आगरा के डा. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय में शोध छात्र हैं।)

विकास समाचार

फोर्ब्स ग्लोबल की सूची में 13 भारतीय कंपनियां

व्यावसायिक क्षेत्र की प्रतिष्ठित अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका 'फोर्ब्स ग्लोबल' द्वारा जारी दो सौ श्रेष्ठ छोटी कंपनियों की सूची में इंफोसिस एवं डा. रेड्डीज लैब समेत 13 भारतीय कंपनियां भी शामिल हैं। यह सूची 20 हजार सूचीबद्ध कंपनियों के बीच से तय की गई है।

इस सूची में सबसे अधिक कंपनियां भारत की हैं। इसके बाद जापान का स्थान आता है जिसकी 12 कंपनियों को चुना गया है। सिंगापुर की 10, ताईवान एवं थाइलैंड की नौ-नौ, आस्ट्रेलिया एवं इंडोनेशिया सात-सात, तथा दक्षिण कोरिया की छह कंपनियों को स्थान मिला है।

हस्तशिल्प उत्पादों के निर्यात में वृद्धि

एक अनुमान के अनुसार चालू वित्त वर्ष के दौरान हथकरघा एवं हस्तशिल्प उत्पादों के निर्यातों में 20 प्रतिशत तक की वृद्धि हो सकती है। इनका निर्यात 14 हजार करोड़ तक पहुंचने की संभावना है। गत छह माह में हस्तशिल्प निर्यात में आशाजनक वृद्धि हुई है। अप्रैल से सितम्बर 2002 के बीच 3177 करोड़ रुपये के हस्तशिल्प का निर्यात हुआ।

सरकार 'ग्रैंड इमेज' विकसित करने के साथ-साथ भारतीय उत्पादों की गुणवत्ता को अंतर्राष्ट्रीय मानक स्तर पर ले आई है ताकि अंतर्राष्ट्रीय बाजार में भारतीय उत्पादों की पकड़ और मजबूत हो सके। इसके लिए कारीगरों एवं शिल्पकारों के लिए और अधिक प्रोत्साहन योजना शुरू की जा रही है। साथ ही उद्योगों को भी और प्रतिष्ठित किया जा रहा है। पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस मंत्री के अनुसार हिन्दुस्तान पेट्रोलियम कॉरपोरेशन लिमिटेड (एच पी सी एल) एवं भारत पेट्रोलियम कॉरपोरेशन लिमिटेड (बी पी सी एल) के विनिवेश पर फैसला दिसम्बर के पहले सप्ताह में होगा। इंजीनियर इंडिया लिमिटेड एवं बॉमर लॉरी के विनिवेश के संबंध में उन्होंने बताया कि इनका विनिवेश अब अंतिम चरण में पहुंच गया है। एच पी सी एल एवं बी पी सी एल के विनिवेश से इन कंपनियों का कुछ लेना देना नहीं है। पेट्रोलियम क्षेत्र की उपलब्धियों के संबंध में उन्होंने सूचना दी कि पिछले तीन साल के दौरान देश में तीन करोड़ एल पी जी गैस कनेक्शन दिए गए। साथ ही गरीब लोगों की सुविधा के लिए 5 किलोग्राम का एल पी जी सिलिंडर बाजार में उतारा गया।

अंडमान-निकोबार द्वीपसमूह में पर्यटन विकास के प्रयास

दुर्लभ जल और वन्य संसाधन के लिए दुनिया भर में मशहूर अंडमान-निकोबार द्वीपसमूह को अंतर्राष्ट्रीय पर्यटन मानचित्र पर जगह दिलाने के सरकारी प्रयासों में अब तेजी लाई जा रही है। बंगाल की खाड़ी में बसे इस द्वीपसमूह की प्राकृतिक सुंदरता को पर्यटकों के रुचि के अनुरूप निखारने के लिए अब यहां विदेशी निवेशकों को भारी-भरकम निवेश के लिए आकर्षित किया जा रहा है। यहां पर्यटन का इस तरीके से विकास किया जाएगा कि उसका पर्यावरण पर प्रतिकूल असर न पड़े। यहां नौकायन एवं अन्य सुविधाओं को बढ़ावा देने वाली महती योजनाएं बनाई जा रही हैं। विदेशी निवेशक इन पर्यटन योजनाओं में विशेष रुचि ले रहे हैं। इधर अंडमान आने वाले पर्यटकों की संख्या में भी वृद्धि हुई है जिससे सरकार काफी संतुष्ट है।

दो भारतीयों ने पाया एशिया 'बिजनेस लीडर' अवार्ड

इस साल के प्रतिष्ठित एशिया 'बिजनेस-लीडर' अवार्ड पाने वालों में दो भारतीय—एस. रामादोरई एवं रामलिंगम राजू शामिल हैं।

टाटा कंसलटेंसी सर्विस (टीसीएस) के मुख्य कार्याधिकारी रामादोरई को एशिया बिजनेस लीडर एवं सत्यम कंप्यूटर्स के अध्यक्ष राजू को कारपोरेट सिटीजन अवार्ड के लिए चुना गया है।

एशिया में उद्योगपतियों को प्रोत्साहित करने के लिए ये वार्षिक पुरस्कार 2001 में स्थापित किए गए जो एशिया में व्यापारिक क्षेत्र में उल्लेखनीय नेतृत्व एवं उपलब्धियों के लिए दिए जाते हैं।

रजि. सं. डी. एल. 12036/2002 तथा डाक व्यय की अदायगी के साथ डाक में डालने के लिए लाइसेंस-प्राप्त
Reg. No. D.L. 12036/2002 Licenced to post with payment at RMS, Delhi.

पंजी सं. 951/57
R.N. 951/57

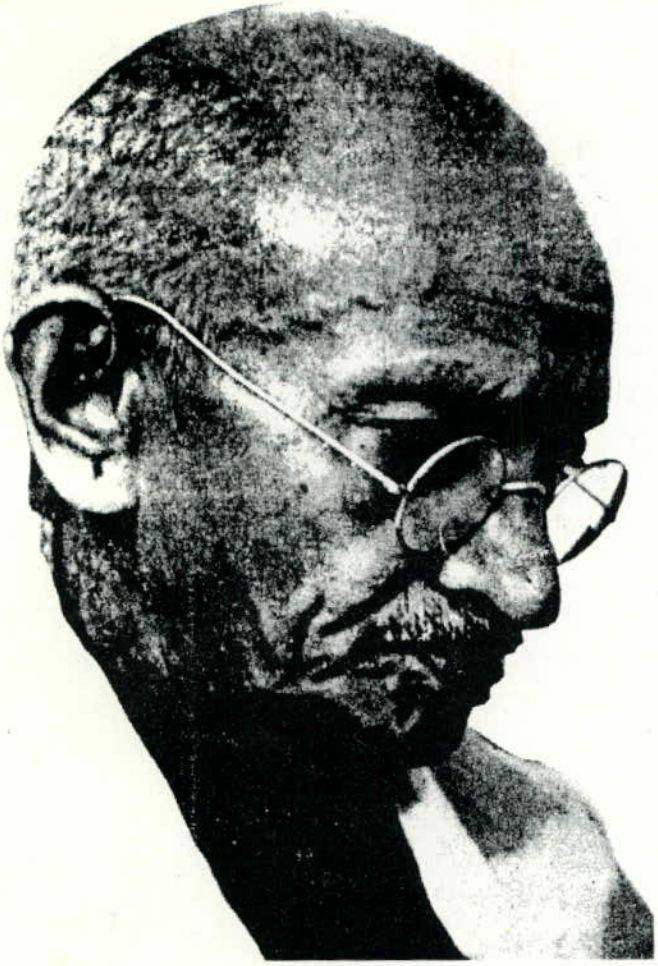

महात्मा गांधी सीडी

इस मल्टीमीडिया सीडी में
गांधीजी पर
30 मिनट की फिल्म फुटेज
550 से अधिक चित्र
करीब 15 मिनट की
गांधीजी की आवाज
और
इलेक्ट्रॉनिक बुक
में साठ हजार से अधिक पृष्ठों में
विस्तृत सांकेतिका के साथ
सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय
संकलित है

यह सीडी प्रकाशन विभाग द्वारा 100 खंडों में प्रकाशित सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय पर आधारित है।

मूल्य : 2000 रुपये

विक्रय और अन्य जानकारी के लिए संपर्क करें :

पटियाला हाउस, तिलक मार्ग, ***नई दिल्ली–110019;*** सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, ***नई दिल्ली–110001;*** हॉल नं. 196, पुराना सचिवालय, ***दिल्ली–110054;*** कामर्स हाउस, करीमभाई रोड बालार्ड पायर, ***मुंबई–400038;*** 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, ***कोलकाता–700069;*** राजाजी भवन, बेसेंट नगर, ***चेन्नई–600090;*** बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, ***पटना–800004;*** प्रेस रोड, निकट गवर्नमेण्ट प्रेस, ***तिरुअनंतपुरम–695001;*** प्रथम तल, एफ विंग, केन्द्रीय सदन, कोरामंगला ***बंगलौर–560034;*** अम्बिका कॉम्प्लैक्स, प्रथम तल, पाल्डी, ***अहमदाबाद–380007;*** नवजन रोड, उजान बाजार, ***गुवाहाटी–781001;*** 27 / 6, राम मोहन राय मार्ग, ***लखनऊ–226001;*** ब्लॉक नं., 4, पहली मंजिल, ग्रुहाकल्पा कॉम्पलैक्स, एम.जे. रोड, नामपल्ली, ***हैदराबाद–500001;*** 80, मालवीय नगर, ***भोपाल–462003;*** सी.जी.ओ. काम्प्लैक्स, 'ए' विंग, ए.बी. रोड, ***इंदौर;*** बी–7बी, भवानी सिंह मार्ग, ***जयपुर–302001***

पी.एस. भटनागर, निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110 001 से प्रकाशित एवं मुद्रित तथा तारा आर्ट प्रेस, बी-4, हंस भवन, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002 में मुद्रित। दूरभाष : 3378626, 3379686
कार्यकारी संपादक : अंजनी भूषण